समय का स्वर

[उपन्यास]

□

□

आशापूर्णा देवी

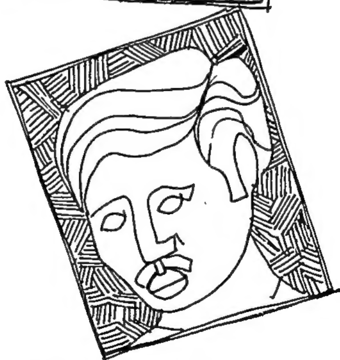
□

□

अनुवाद

ममता खरे





रवीन्द्र प्रकाशन, इलाहाबाद-२

আশাপূর্ণা দেবী



SAMAY KA SWAR
Novel by
Smt. Ashapurna Devi



बंगला से अनुवाद
ममता खरे



प्रकाशक
रवीन्द्र प्रकाशन
११३१, कटरा, इलाहाबाद–२११००२



मुद्रक
जय हनुमान प्रिंटिंग प्रेस
१-सी, बाई का बाग, इलाहाबाद–३



आवरण व सज्जा
इम्पैक्ट, इलाहाबाद



प्रथम संस्करण : १९८५



मूल्य : बीस रुपये

जिन्दगी में कैसे उलट-फेर हो जाते हैं !

मृणाल की पत्नी खो गई, नयी ब्याही बहू गायब हो गई। खोजने पर उसके स्थान पर दूसरी तरुणी मिल गई। फिर उसे ही सहेज-बटोर कर परिवार में एक कम हो गये प्राणी की कमी पूरी करने की योजना बनी। लेकिन तीन साल बाद जब वह गायब हुई बहू मिल गई तो सारी योजना कैसे गायब हो गई ! क्या हुआ ?

मृनाल, ज्योति, मालविका, माँ, पिताजी—सबकी अलग-अलग बात, लेकिन समस्या का हल क्या निकला ?

आशापूर्ण देवी की सशक्त लेखनी से नितांत पारिवारिक जीवन की अन्तरंग झाँकी।

समय का स्वर



एक

उसके बाद, उस भयानक आंधी-तूफान के बाद उस रात पानी बरसना शुरू हुआ। वह पानी का बरसना भी भयंकर ही था।

बढ़ती ही जा रही थी उसकी गति, बढ़ रहा था तर्जन, गर्जन। पानी, पानी, अथाह पानी। यूं लगने लगा मानो प्रलय की वर्षा हो, मानो घोषणा हो गई है कि आज पृथ्वी का यह अंतिम दिन है।

सोता हुआ आदमी भी जाग उठा था। जग कर शरीर के चारों ओर चद्दर, कम्बल-कपड़ा अच्छी तरह से ढँक कर लेट रहा था। अपने आस-पास लेटे प्रियजनों के गले से चिपट कर या गोद के पास लेटे शिशु को छाती से चिपका कर लेटने पर भी डर कर सिहर रहे थे लोग। यह रात शायद ही खत्म हो। यह वर्षा तो पृथ्वी को खींच कर पहुँचा देगी अंतिम दिन तक।

परन्तु उनका क्या हुआ, जो उस रात बिस्तर पर बैठ तक न सके थे?

जो तूफान के चपेट में आकर विध्वस्त हो गए थे? वे लोग?

वे शायद यही आशा कर रहे थे, यही प्रार्थना कर रहे थे। यह रात खत्म न हो, दिन न निकले, यह बरसना न रुके। बढ़ जाए गर्जन, बढ़े गति, बढ़े आक्रोश। मिट जाए पृथ्वी का नामोनिशान, धुल-पुंछ कर साफ हो जाये विधाता की सृष्टि की कलंक-कालिमा। कलंक के सिवा और क्या है?

बरसना प्रकृति का है परन्तु तूफान का यह ताडव तो मनुष्य का है। या तो फिर पशु का है, जो पशु विधाता की ही सृष्टि है। शायद पश्चात्ताप करते विधाता ने, इस पशुत्व को देख कर ही अपनी सृष्टि की ग्लानि को छिपाने के लिए लज्जा और धिक्कारवश पृथ्वी के रंगमंच पर यह पर्दा डाल देना चाहा था। यह भी हो सकता है कि अविरत वर्षा द्वारा वे असतर्क क्षणों में लगे कलंक को धो डालना चाहते थे। ऐसा कुछ न होता तो ऐसे भयंकर समय में अकस्मात् इस तरह से पानी क्यों बरसने लगता?

आकस्मिक ही।

शाम होते ही चाँदनी छिटकी थी। तालाब के किनारे घास पर पाँव फैला कर बैठी थी ज्योति। बोली—'आज कौन सी तिथि है जी?'

मृनाल ने उत्तर दिया था—'कौन जाने? कौन पत्रा देखता है? पर लग रहा है, पूर्णिमा के आसपास की कोई तिथि होगी।'

'शायद चतुर्दशी हो। माँ ने कहा था, कल पिताजी चावल नहीं खाएँगे।'

मृनाल ने हँस कर कहा—'माँ-पिताजी यहाँ आकर बड़े मौज में हैं। क्यों हैं न?'

'हम भी तो मौज में ही हैं।'

'अरे, हम तो मौज में रहेंगे ही। हमारा मौज मारना कौन रोक सकता है?

कलकत्ते के उस दस फुट वाई बारह फुट के कमरे में क्या हम मौज से नहीं रहते हैं ? माँ और पिताजी को ही ठूँस-ठांस कर रहने में तकलीफ होती है।'

'कौन कहता है, तकलीफ होती है ?'

'कहने की जरूरत है क्या ? रात-दिन के झगड़े से ही मालूम हो जाता है।'

'उस झगडे का कोई मतलब नहीं,' ज्योति हँसने लगी—'देखना तो यह रहता है कि दोनों एक दूसरे से दूर-दूर तो नहीं रह रहे हैं। यही चीज खराब होती है। झगड़ना तो अच्छा होता है।'

'ऐसी बात है ? तब तो हमें भी कोशिश करनी चाहिए।' हँसने लगा मृनाल।

ज्योति भी हँसी—'कोशिश करने से झगड़ा नहीं होता है। अपने आप ही होता है। बालों पर पाउडर छिड़कने से बाल नहीं पकते हैं जनाब, पकने को होते हैं तब पकते हैं।'

आयोजनहीन इधर-उधर की नाना प्रकार की बातें। दोनों के एक दूसरे से उलझे रहने के लिए बातें। हो सकता है अर्थहीन हो। बात करने के लिए बात करना।

उसी बेखबरी में कब चांदनी छिपी, कब आसमान बादलों से घिर गया, पता नहीं चल पाया। अचानक चौंक पड़े दोनों।

'अरे देखो, रात बढ़ रही है। और ज्यादा देर तक बाहर रहेंगे तो पिताजी नाराज होंगे।' ज्योति बोली।

'लगता तो नहीं है, पिताजी डांटेंगे।' मृनाल ने कहा।

'लगता क्यों नहीं है ?'

'उँह ! हम जब तक बाहर रहेंगे, तब तक वे दोनों अकेले रहने का सुख उठाएँगे।'

ज्योति बिगड़ कर बोली—'ए ! बेकार की बातें मत करो। गुरुजन हैं न ?'

मृनाल इसके लिए शर्मिन्दा नहीं।

बड़े सहज ढंग से बोला—'इससे क्या होता है ? गुरुजन हैं तो क्या प्रियजन नहीं हैं ? फिर ? प्रियजन को सुखी, खुशी और प्यार देख कर खुश होने पर भी कोई रुकावट है क्या ? मैं तो यहाँ आ कर देख रहा हूँ कि उन लोगों की उम्र मानो कई साल कम हो गई है। उस दिन पिताजी कितने खुश नजर आ रहे थे जब माँ ने कहा था, 'इसी आँगन में मैं ब्याह कर आई थी तब खड़ी हुई थी। तुम आकर मेरे पास खड़े हुए थे, वह समय याद है ?' उस समय तुमने कुछ ख्याल किया था ?'

मुस्कुरा कर ज्योति ने कहा—'ख्याल क्यों नहीं करूँगी ? उस दिन माँ पिताजी से हँस-हँस कर धीरे-धीरे कह रही थीं—' कमरे की याद है ? हमारी सुहागरात का कमरा।' मैं उधर ही से जा रही थी, भाग खड़ी हुई।'

"प्यार कभी बूढ़ा नहीं होता है।' मृनाल बोला। जेब से सिगरेट निकाली उसने—'पी सकता हूँ ?'

ज्योति उसे धकेल कर बोली—'ओहो, इजाजत ली जा रही है !'

'लेना उचित भी तो है।'

सिगरेट सुलगा कर गम्भीर स्वरों में या शायद आवेगवश बोल उठा—'लेकिन हम बूढ़े होने पर कहीं खड़े हो कर यह न कह सकेंगे, 'देखो, तुम्हें क्या याद है इसी कमरे में हमने सुहागरात मनाई थी...'

ज्योति भी गम्भीर हो उठी परन्तु हल्के स्वरों में बोली—'तब तो फिर उसी करुणामयी बालिका विद्यालय की बिल्डिंग में जाना पड़ेगा।'

'ठीक कहा है।' हाथ में पकड़ी सिगरेट जलती रही।

ज्योति बोली—'जबकि तुम लोगों का इतना बड़ा मकान है। जो भी कहो, शादी-वादी अपने घर से ही करनी चाहिए। सिर्फ धूमधाम करने के मतलब तो शादी नहीं है। यहां आ कर बराबर लग रहा है कि सात पुश्तों से तुम्हारे पूर्वज यहां रहते रहे थे, तुम्हारी दादियां यहीं ब्याह कर आई थीं, इसी आंगन में दूध-आलता की थाली में खड़ी हुई थीं, इसी कमरे में बैठ कर लक्ष्मी की कथा सुनी थी। इससे रोमांचित नहीं होता है शरीर ?'

'हूं, सुन कर लग तो रहा है।'

'न सुनते तो कुछ नहीं लगता ?'

मृनाल हँसा—'बिल्कुल नहीं कैसे कह दूं ? सच कहूं, उस दिन पिताजी की बात सुन कर पछतावा-सा हुआ था।...लगा था याद रखी जाए, ऐसी एक जगह होनी चाहिए। लेकिन जिम्मेदार तो मैं ही हूं। पिताजी ने एक बार बात छेड़ी थी, शादी के लिए पूजा-पाठ का कार्यक्रम घर पर किया जाए। मैं एकलौता लड़का भी हूं, पर मैंने ही बात उड़ा दी। सोचा, इतने दिनों से गाँव छूट गया है, अब उस टूटे घर में...'

'ऐसा कुछ टूटा नहीं है, उस पर कितना बड़ा है। कितने कमरे, कितना बड़ा आंगन और यह तालाब, बागीचा ! कुछ भी कहो, सोचती हूं तो अवाक् रह जाती हूं कि यह सब तुम लोगों का अपना है।'

'हम ही लोगों का है ? तुम्हारा नहीं ?'

'ठीक है भई, हमारा भी है। और देखो हम उन दो कमरों के फ्लैट में पड़े हैं। मकान अगर किसी वैज्ञानिक कौशल से उठा कर ले जाया जा सकता...'

मृनाल हँस कर बोला—'कोशिश करके देखना चाहिए, विज्ञान जैसे-जैसे करिश्में कर रहा है ! लेकिन चिन्ता तो इस बात की है कि इसकी स्थापना कहां होगी। एक ही उपाय है अगर सिर पर लिए फिर सको।...'

'नहीं नहीं, तुम कुछ भी कहो, इस बरबादी का मुझे भयानक अफसोस है। अच्छा, तुम लोग यहां कब से नहीं आए थे ?'

मृनाल बोला—'व...होत दिन हो गये। न जाने कब बचपन में। अरे, समझ लो कि देश-विभाजन के पहले ही से हम गाँव छोड़ चुके थे। बाद में पिताजी एक बार आये थे, फिर वह भी बन्द हो गया। इतने बॉर्डर पर है, हाथों से निकला

रहा था। यह तो किस्मत जोरदार थी कि अन्त में इधर के हिस्से में आ गया। उस पर भी शुरू-शुरू में कम झमेले नहीं। यह समझो कि ताऊजी थे इसलिए वेदखल नहीं हुआ, वरना वह भी हो गया होता। ताऊजी मर गये, अब...'

'अब हम लोग कब्जे में रखेंगे...' ज्योति ने दृढ़ता से कहा—'सच कहती हूँ, शादी होने के बाद से ही हमेशा मेरी इच्छा यहाँ आने की थी। मैंने कभी गाँव नहीं देखा था।'

'यह भी तो सच है कि तुम्हारी ज़िद के कारण ही यहाँ आना हुआ है। लेकिन अब अच्छा लग रहा है। अफसोस हो रहा है कि इतने दिनों से आए क्यों नहीं।'

'और कितनी छुट्टी बाकी है तुम्हारी?' हल्की आवाज़ में ज्योति ने पूछा।

'और कितनी बार यही प्रश्न पूछोगी?' मृनाल ने हँस कर कहा—'परसों ही तो जाना पड़ेगा।'

'हम लोग फिर आएँगे लेकिन।'

'आ ही सकते हैं। दूर ही कितना है? खर्च भी कोई खास नहीं।'

'जबकि बीस साल से आए नहीं। इसके मतलब हुए अपने गाँव से तुम्हें प्यार नहीं है।'

'देखो ज्योति, प्यार नहीं करता हूँ कहना ठीक नहीं होगा। लेकिन कुछ प्यार ऐसे होते हैं जो मन की गहराई में सोये रहते हैं। जब तक उन्हें व्यावहारिक जगत् में खींच न लाओ, उन्हें पहचानना मुश्किल होता है।'

अचानक ज्योति बोल उठी—'न चाहना भी वैसा ही होता है। मन की गहराइयों में छिपी रहती है। व्यावहारिक जगत् में खींच कर लाए बगैर समझ में नहीं आता है कि यह ▪ प्यार करना है। इतने दिनों से मैं उसे प्यार समझती आ रही थी।'

'मुझे तुम्हारी थ्योरी से आपत्ति है। मुझे लग रहा है कि मुझे किसी बात का खतरा है। हो सकता है सुनने में आए कि तुम्हारा प्यार सिर्फ प्यार का दिखावा है।'

'हुँह, और नहीं तो क्या?' ज्योति बोल पड़ी—'नखरे छोड़ो। लेकिन सच मानो, इस मकान के कारण ही यह बातें मेरे मन में उठ रही हैं। जब पिताजी को धीरे-धीरे दीवालों पर हाथ फेरते, या फर्श पर रगड़-रगड़ कर पाँव रखते, पुरानी होती खिड़कियों को ठोंक कर उनकी मजबूती का अनुमान लगाते पाती हूँ तभी लगता है कि कितना प्यार होगा उनके दिल में। जबकि आज तक कभी यहाँ आने की इच्छा नहीं हुई थी, इसकी मरम्मत करवाने की इच्छा नहीं हुई थी। फिर जब कलकत्ते वापस जाओगे तो इस मकान की बात शायद बिल्कुल भूल जाओ। याद ही नहीं आएगा कि यहाँ इतनी प्यारी चीज़ पड़ी है। इसके मतलब हुए आँखों के ओट यानी कि मन से ओट होना।'

'सर्वनाश! इसी बीच तुमने इतनी बातें सोच लीं?' मृनाल ने उसे अपने पास खींचते हुए कहा—'श्रीमती जी, जरा कम चिन्ता कीजिए। असली बात तो यह है कि इन्सान हालातों का गुलाम है। यहाँ खुशियाँ थीं, लेकिन उन खुशियों पर चढ़ बैठा आतंक। उसी आतंक ने आज तक इधर देखने नहीं दिया था। इन दिनों आतंक कम है इसीलिए

आना सम्भव हुआ है। वरना हर खत में ताऊजी किसी की गाय या किसी की जोरू, चोरी का हाल लिखा करते थे।'

ज्योति हँस पड़ी—'हाँ, दोनों ही चीजें तो एक ही खाते में पड़ती हैं—हैं न ?'

'जिनकी यह भाषा है—उनकी अवश्य ही पड़ती है। हमारी सभ्य बंगला भाषा में ऐसे गन्दे उदाहरण नहीं मिलेंगे।'

ज्योति ने गम्भीर हो कर पूछा—'अच्छा, अभी भी खतरा है क्या ?'

मृनाल हँसने लगा—'क्यों भला बताओ तो, यहीं रह जाने का इरादा है क्या ?'

'हाँ हाँ, मैं कोई पागल हूँ क्या ? मेरी इच्छा है कि इसकी मरम्मत वगैरा हो जाये, जिससे कि हम चेन्ज के लिए यहाँ आ सकें। माँ भी इस परियोजना पर खुश हैं। कहती हैं, तुम लोग आओगी तो मेरा भी आना हो सकेगा। लेकिन पिताजी ने क्या कहा है जानते हो ?'

हँस कर ज्योति आगे बोली—'पिताजी ने अच्छी उपमा दी है। कहा, खर्च करके मकान ठीक करने से क्या फायदा होगा बहूरानी ? यह सब जगह तो ऐसी पड़ी है जैसे बिल्ली के आगे बेठकी मछली। न जाने कब मुट्ठी में भर लेंगे।'

मृनाल ने पूछा—'तुमने क्या मरम्मत करवाने की जिद्द की है ?'

'की तो है ही। मुझे यह जगह इतनी अच्छी लगी है। यूँ लग रहा है कि एक साथ कई आकर्षणों के बंधन में बँध गई हूँ।...लग रहा है...'

'ठीक है, कल्पनावती, इस टूटे महल में आकर तुम्हें और क्या-क्या लग रहा है, बाद में सुनूँगा। रात को तो सोना है नहीं। अब चलो। चाँदनी तो कब की गायब हो चुकी है। ध्यान ही नहीं दिया था। चलो, चलो।'

मृनाल उठ कर खड़ा हो गया था। ज्योति भी उठ रही थी।

अचानक निस्तब्धता भेद कर एक भयंकर हल्ला उठा।

एक आर्तनाद ! बहुतेरी आवाजें उल्लास और उन्मादभरी। अशुभ शब्द ! अशुभ आवाजें।

यह क्या ?

डर कर ज्योति, मृनाल से चिपक गई—'क्या है ? क्या है ? ये कैसा हल्ला है ?'

डर मृनाल भी गया था।

ऐसे हल्ले वह बहुत सुन चुका है। इन हल्लों से वह परिचित है। फिर भी हिम्मत बंधाते हुए बोला—'समझ में नहीं आ रहा है। अचानक कहीं कोई मर-मर गया है क्या ?'

वे दोनों तालाब के किनारे-किनारे हो कर घर की तरफ दौड़ने लगे।

सुनाई पड़ता उन्हें, एक साथ दो आवाजें गला फाड़ कर पुकार रही हैं—'मृनाल ...बहूरानी।'

डर कर फटी-फटी आवाजें।

डर गए थे वे लोग।

उन्होंने भी अचानक उठे हल्ले और आर्तनाद की आवाज़ सुनी थी।

भक्तिभूषण और लीलावती ने। इसीलिए वे अपने एकमात्र अवलम्बन और भरोसे को पुकार रहे थे—...'मृनाल...बहूरानी।'

दो

मृनाल ने कहा था, 'प्यार कभी बूढ़ा नहीं होता है। यह उसकी गलत धारणा है। प्यार भी बूढ़ा होता है। वह बुढ़ापा समझ में आता है चंचलता से, उत्कण्ठा और अस्थिरता से। बूढ़ा होता प्यार 'दोनों एकान्त में' के चक्कर में देर तक खो जाना नहीं जानता है। आसपास देखता है। देखता है सब ठीक है या नहीं। लीलावती भी देख रही थीं।

दोनों पुराने पलंग पर बैठ कर अतीत की यादों में खो जाने पर भी वह रह-रह कर उठ कर देख आती थी कि रसोई के दरवाज़े की जंजीर हिलने की-सी आवाज क्यों हुई? कहीं बिल्ली कूदी गया?...मृनाल का कमरा बन्द है या खुला? आँगन की रस्सी पर से सूखे कपड़े हटा लिए गये हैं या नहीं?

और भक्तिभूषण बार-बार बाहर की तरफ का चक्कर लगा आ रहे थे, यह देखने के लिए कि वे लोग लौट रहे हैं या नहीं।

हर बार लौट कर आते तो कहते—'कहाँ चले गए हैं? कुछ कह कर गए हैं या नहीं?'

'बता तो रही हूँ,' लीलावती कहतीं—'कह गए हैं कि ज़रा चाँदनी रात में टहल कर आते हैं। इतनी देर करेंगे, मुझे क्या पता था?'

'चाँदनी रात में टहल आयें! आश्चर्य की बात है! अनजानी-अनदेखी जगह, साँप-बिच्छू का डर है...न, इन्होंने तो परेशानी में डाल दिया।'

लीलावती ने कई बार कहा—'इतनी चिन्ता क्यों कर रहे हो? दो दिन बीतते न बीतते तो छुट्टी खत्म हो जाएगी। घूमने ही तो आए हैं। दिन को तेज धूप की वजह से कहाँ घूम पाते हैं? इसीलिए सोचती हूँ—समय कितना बदल गया है! हमलोगों के समय में घूँघट काढ़े बगैर पूजा वाले चबूतरे तक नहीं जा सकते थे...रास्ते तक जाने की बात तो छोड़ दो।'

'तब गाँव में कितने लोग रहते थे! सात मकानों में नाते-रिश्तेदार ही भरे पड़े थे।'

लीलावती ने एक बार फिर अतीत की बात याद दिलाई—'याद है क्या तुम्हें,

एक बार बहुत रात गए हम दोनों छत पर चढ़े थे, उस बात पर कितनी हाय-हाय हुई थी।'

भक्तिभूषण को यह घटना याद नहीं थी। बोले—'हो सकता है। लेकिन इन्होंने तो चिन्ता उत्पन्न कर दी। बहूरानी का सब अच्छा है लेकिन है बेहद लापरवाह किस्म की। यही उसमें ऐब है।'

लीलावती बहू का पक्ष ले कर बोली—'वह अभी बच्ची है, कभी मैदान, बाग-बगीचा, तालाब देखा ही नहीं—देख रही है और मुग्ध हो रही है। मृनाल को ही चाहिए ...' सहसा बोलना बन्द कर सजग हुई। कान खड़े हो गए। चौंक कर बोली—'क्या हुआ? क्या है वह? कहां गड़बड़ हो रहा है?'

भक्तिभूषण भी चौंके और ज्यादा।

वह बाहर के दरवाज़े की तरफ दौड़े। इस खण्डहरनुमा महल के सूने कमरों में से जैसे भय-मिश्रित हवा की लहर निकल गई। आ मिली एक नारकीय कोलाहल के साथ।

भक्तिभूषण दरवाजा खोल कर जी-जान से चिल्लाने लगे, 'मृनाल—बहूरानी।'

बाहर नहीं निकले। लीलावती को अकेली छोड़ कर जाने की बात, दिमाग में आई नहीं। केवल जितना हो सका, गला ऊंचा उठा कर, आवाज़ चढ़ा कर पुकारते रहे—'मृनाल—बहूरानी।'

लीलावती भी आ गई थी। पति से सट कर खड़ी थी, आर्तनाद कर रही थी—'मृनाल—बहूरानी।'

तीन

आर्तनाद बढ़ता रहा। संक्रामक रोग की तरह फैलने लगा—सारे मोहल्ले में। सारे गांव भर में मानों आर्तनाद सिर कूट-कूट कर मरने लगा। मानों उसने निश्चय कर लिया है कि आकाश बेंध डालेगा। सारी दुनिया को जता देगा कि 'लुटेरे' आए हैं। लूट रहे हैं ढोर-गोरू। लूट रहे हैं सम्मान-मर्यादा, शान्ति-शृंखला।

जिन्होंने शान्ति की सांस छोड़ते हुए सोचा था, अब डरने की कोई बात नहीं, उनकी ही निश्चिन्तता पर आ गिरी है जलती मशाल। जैसे किसी ने बारूद से भरी तोप में दियासलाई छुला दी हो।

कौन बता सकता है कि तोप में बारूद भरी क्यों है?

कोई नहीं बता सकता कि आज भी आग इतनी ज्यादा क्यों धधक रही है? जंगलीपन आज भी तीव्रतर है?

कोई नहीं जानता, किस वजह से क्या होता है ? केवल भाषाहीन आँखों से खड़े-खड़े देखा करते हैं—घर जल रहा है, खेत-खलिहान जल रहे हैं, जीवन भर की जमा-पूँजी जल रही है।

चार

लेकिन इस आग से क्या इतिहास के पृष्ठ कलंकित रहेंगे ?

नहीं। इतने पृष्ठ हैं कहाँ इतिहास में ? शायद केवल अखबार के एक कोने में जगह मिलेगी, स्थानीय संवाददाता द्वारा ज्ञात होगा, 'सीमान्त इलाके में कुछ छुटपुट घटनाओं के अलावा स्थिति शान्त है।'

इन छुटपुट घटनाओं के तीक्ष्ण दाँतों ने क्या-क्या छिन्न-भिन्न कर डाला, इस बात की सूचना देना संवाददाता का काम नहीं। और जानने की गरज है किसे ?

जिस समय मृनाल के ताऊजी पड़ोसी के जोरू-गोरू चोरी जाने की खबर लिखा करते थे, तब क्या कभी मृनाल ने जानना चाहा था कि वे लोग कौन हैं ? वे गए कहाँ ?

श्मशान में तो चितायें हर रोज जलती हैं, दिन-रात जला करती हैं पर उसके लिए क्या हर एक का दिल जलता है ? विच्छिन्न घटनायें विच्छिन्न ही रहती हैं !

'ज्योति' नामक जरा सी रोशनी, जरा सी चमक 'मृनाल' नामक जीवन से विच्छिन्न हो गई, विच्छिन्न हो गई लीलावती और भक्तिभूषण की प्यार-भरी गृहस्थी के बन्धन से—ये तो सिर्फ उन्हीं ने जाना।

और किसी को रास्ते में घूम-घूम कर जता सकते, इसका उपाय भी नहीं रहा। उसके बाद ही शुरू हुई—आँधी-तूफान के बाद भारी वर्षा।

अनुतप्त सृष्टिकर्ता के आँसुओं की तरह।

लेकिन विधाता का शोक शायद शराबी के शोक की तरह ही अस्थायी होता है। इसीलिए जो लोग मना रहे थे कि 'आज की रात खत्म न हो,' उनकी प्रार्थना को अंगूठा दिखाते हुए यथासमय रात बीत गई और निर्लज्ज आकाश आँखें फाड़-फाड़ कर देखने लगा कि असहाय पृथ्वी कितनी तहस-नहस हुई है। देखा—

भक्तिभूषण का खण्डहरनुमा घर, जो इन कुछ दिनों तक हँसी-खुशी और धूप-रोशनी में झिलमिल कर रहा था, वही इस भयानक वर्षा से शोकग्रस्त रुँआसा-सा पड़ा था। मानों धून में मिल जाने की प्रतीक्षा कर रहा हो।

वर्षा की गरजन को बेध कर रह-रह कर रात भर लीलावती जिस नाम को लेती रही थी, वही नाम जैसे अनिश्चित कानून द्वारा लेना मना हो गया। दिन की रोशनी

में वह नाम लेना सम्भव नहीं। कोई जानने न पाये कि भक्तिभूषण अपने पैतृक मकान में आकर सबसे मंहगी चीज खो बैठे हैं और तभी चोरों की तरह भागे हैं।

पाँच

'तुम लोग चले जाओ।' दूसरी तरफ मुँह फेर कर तीनों में से एक ने कहा —'तब कोई शक नहीं करेगा। सोचेंगे, सब चले गए हैं—' गला खंखारा। कुछ ठहर कर बोला—'केवल मैं हूँ, कुछ दिनों रहूँगा, घर की देख-भाल करूँगा।'

यह न बोला कि उसे क्यों रहना पड़ेगा। फिर भी समझ में आ गया, क्यों रहेगा। स्पष्ट था, वह ढूंढ़ेगा, वह इन्तजारी करेगा।

एक और ने बहुत देर बाद कहा—'कौन जाने और किस-किस का सर्वनाश हो गया है।'

जो अब तक बोले न थे, वे बोले—'पता नहीं चल सकेगा। कोई नहीं बतायेगा। सर्वस्व खो कर भी स्वाभाविकता और सहजता से घूमने फिरने की चेष्टा करेंगे। उसी 'खो जाने' की खबर को छिपाने के लिए झूठ की माला पिरोएँगे।'

तीनों ने मन ही मन कहा, जैसा कि हम करने जा रहे हैं।

'मैं नहीं जाऊँगी मृनाल। मैं किस मुँह से तुझे छोड़ कर चली जाऊँ?'

बोली लीलावती। फटी-फटी आवाज में।

भक्तिभूषण बोले—'आज किसी का भी जाना नहीं हो सकता है।'

उसके बाद कुछ देर तक घुटने-घुटने तक कीचड़ भरे गाँव का चप्पा-चप्पा छानने वाली हास्यकर पागलों जैसी हरकत करके दोनों वापस आ गए।

बाप और बेटा। दोनों अधजली लकड़ी लग रहे थे देखने में।

उन्होंने देखा, लीलावती धीरे-धीरे कह रही हैं, 'बहूरानी, बहूरानी! मैं उस समय यह क्यों न समझ सकी कि तुम्हें नियति यहाँ घसीट कर लिए आ रही है? तुम्हारी जिद्द देख कर मैं डरी क्यों नहीं?'

नियति! इतनी देर बाद मानो मृनाल को एक तीखे तेज प्रश्न का उत्तर मिल गया। नियति! नियति के अलावा और कौन हो सकता है? नियति के अलावा और कौन उसे, बीस साल बाद इस छोड़े हुए पैतृक मकान में खींच ला सकता था? नियति के अलावा और किसकी हिम्मत थी कि अनजान इस जगह में, इतनी रात गए, खुले आसमान के नीचे युवती पत्नी के साथ उसे बैठाए रखती?

मृनाल नहीं जानता था क्या कि यहाँ सुरक्षा की कमी है ? मृनाल यह भी नहीं जानता था कि यह गाँव बिल्ली के पंजे के सामने पड़ी मछली की तरह है ?

छः

मृनाल यह सब कुछ जानता था।

फिर भी मृनाल ने भयंकर दुस्साहस का काम किया था। अतएव नियति, भाग्य ! मृनाल समझ रहा था, लीलावती और भक्तिभूषण अब उसकी तरफ अभियोग वाली नजरों से नहीं देख रहे हैं। क्योंकि इस समय लड़के का मुंह देख कर उनकी छाती फटी जा रही है। परन्तु बाद में उसी नज़र से देखेंगे।

पहले खामोश अभियोग-भरी नजरों से, उसके बाद तीव्र तिरस्कारपूर्ण रुक्षता के साथ।

वे कहेंगे—'तू ! तू इसके लिए जिम्मेदार है ! तूने ही यह काम किया है। तू अगर आधी रात तक पत्नी को लेकर तालाब के किनारे न बैठा रहता !'

तब मृनाल माथा ठोंक कर कह सकेगा—'भाग्य ! नियति, वरना आत्महत्या किए बगैर कैसे जिन्दा रह सकेगा ? इधर जिन्दा रहना भी है।'

ज्योति के लिए जिन्दा रहना है। ज्योति की इन्तज़ारी करनी होगी।

इन्तज़ारी करेगा, ढूंढ़ेगा और उसी कलकत्ते वाले मकान के दस फुट बाई बारह फुट वाले कमरे की खिड़की के पास वाले बिस्तर से शुरू कर, एक के बाद एक घटनाएँ क्रमवार सजा कर नियति के निर्देश को देखेगा।

कमरा अंधेरा था। तकिए से सिर उठा कर ज्योति बोली थी—'मेरी बहादुरी की तारीफ़ करो। पिताजी को राज़ी कर लिया गया है।'

'पिताजी को राज़ी करना ?' मृनाल बोला था—'यह कौन सा मुश्किल काम है ? बहूरानी की इच्छा। उसके बाद दुबारा अनुरोध करने का प्रश्न ही नहीं उठता है।'

'आ हा हा ! बिल्कुल ऐसी बात नहीं है। बहुत हाथ-पाँव जोड़ने और मिन्नत करने पर, तब वहाँ जा कर—समझे ? पिताजी की धारणा है कि मैं वहाँ की असुविधाओं को बरदाश्त न कर सकूँगी। मैं इसी बात को गलत साबित करूँगी।'

'माँ को राज़ी कर लिया है या नहीं ?'

'माँ ? सुनो जरा इनकी बातें ! अरे, वह तो पहले ही हो चुका है। माँ को तैयार किए बगैर पिताजी से कहने जाऊँगी ? मैं इतनी बेवकूफ़ नहीं हूँ कि उन्हें मिलाये बगैर कोई काम करूँ।'

अंधेरे के कारण चेहरा स्पष्ट दिखाई न देने पर भी पता चल रहा था कि खुशी से जगमगा रहा है।

यह खुशी किसे थी ? अवश्य ही नियति को।

लीलावती भी यही कह रही है—'उसका यहाँ आने के लिए पागलपन करना देख कर ही मुझे डर लग रहा था। मैंने उससे प्रतिज्ञा करवा ली थी कि तालाब में नहाएगी नही। मैं पानी से डर रही थी। नियति हाथों में आग लिए बैठी है, इस बात की कल्पना तक मैंने नही की थी।' और बहुत कुछ कहा था लीलावती ने शोकाकुल हो कर। क्योंकि लीलावती आशा छोड़ चुकी थी पर भक्तिभूषण इस बात को जरा भी महत्व नही दे रहे थे। न दे रहा था मृनाल।

वे दोनों सोच रहे थे, थाने में खबर कैसे की जाये, कैसे अखबारों में विज्ञापन निकाला जाये, और कैसे पता किया जाये कि कौन लूटने आये थे ? इन लुटेरों की गतिविधि का क्षेत्र कितना है ?

परन्तु क्या वास्तव में कोई आशा थी ? उन्होंने क्या दुनिया नही देखी है ? देख नही रहे हैं ? हर दिन तो देखा करते हैं।

फिर भी वे जानते हैं, बैठे-बैठे रोते रहना, उन्हे शोभा नही देता है।

जबकि समूचे एक आदमी को ही अगर कोई लूट कर ले जाए, तो क्या-क्या करना उचित होगा, इस बात को ये लोग नही जानते हैं। ऐसी घटना से वे परिचित नही। देखा भी नही था। केवल सुना करते थे।

सुन कर 'हाय-हाय' किया है। या फिर सुन कर सिहर उठे हैं, किन्तु इसके बाद उनका क्या हुआ, इसे कान लगा कर सुनने की जरूरत नही समझी थी।

इसीलिए समझ में नही आ रहा था कि इसके बाद क्या करें ?

सात

यही पानी का बरसना अभिशाप बन गया। भयानक मौके पर अचानक जोर-शोर से आ जाने पर, कौन कहाँ से कहाँ छिटक कर जा पहुँचा।

फिर भी मृनाल माँ और पिताजी के पुकारने पर जब उनके पास आ कर खड़ा हुआ था तब सोच रहा था, वे लोग किसी मुसीबत में फँस गए हैं और ज्योति घर पहुँच गई है। सोचा था, भागने में तो उस्ताद है, पहुँच गई होगी घर।

इसके अलावा कुछ सोचा भी नहीं जा सकता था। तभी यही सोचा था उसने।

मृनाल का कुछ भी सोचा, किसी काम न आया। और भी क्या-क्या सोचा था

मृनाल ने। सोचा था, शायद दौड़ते समय गलती से किसी और के घर में घुस गई है, या शायद जंगल या झाड़ी के पीछे छिपी है, या कहीं बेहोश पड़ी होगी।

उसके बाद धीरे-धीरे सारी चिन्ता स्थिर हुई जा रही थी। क्रमशः पत्थर में परिणत होती जा रही है। जमी जा रही है।

केवल कह रहा है, 'तुम लोग जाओ, मैं नहीं जाऊँगा।'

लीलावती डर के मारे आधी हुई जा रही थी। जिस नौकरानी को रखा है, वह आ खड़ी हुई तो क्या कहेगी?

अगर पूछ बैठे, 'माँ, भाभी जी नहीं दिखाई दे रही है?' तो इस सवाल का जवाब क्या सोच ले? क्या जवाब देगी? लेकिन ईश्वर ने बचा लिया। नौकरानी ही नहीं आई।

बहुत देर बाद लीलावती को ध्यान आया, आएगी कैसे? आना असम्भव है। कल के आँधी-पानी में उसके घर का छप्पर उड़ गया होगा। सब कुछ बरबाद हो गया होगा।

'चलो, अब नहीं आयेगी।' लीलावती ने सोचा। सोच कर मन को शान्ति मिली।

दूसरे किसी के घर का छप्पर उड़ने की बात सोच कर शान्ति मिली!

शायद अपने घर का छप्पर उड़ जाने से आदमी ऐसा ही निर्मम और निर्लज्ज बन जाता है, वरना लीलावती ने यह बात सोची कैसे? कैसे सोचा, भगवान्, गाँव भर में इतनी बहू-बेटियों के रहते मेरी बहू ही क्यों चली गई? हम तो दो दिन के लिए घूमने ही आये थे।

उसके बाद धीरे-धीरे दिल में यह ख्याल पैदा होने लगा, 'जान-बूझ कर...जान-बूझ कर यह मुसीबत बुलाई गई है। डर नहीं, शर्म नहीं, गुरुजनों को सम्मान दिखाना नहीं, आधी रात तक तालाब के किनारे बैठ कर प्रेमालाप हो रहा है! इतना बड़ा घर है, इतने कमरे हैं, बारामदे हैं, आँगन है, चाँदनी से छत का कोना-कोना जगमगा रहा है! तुम दोनों को कहीं जगह नहीं मिली? इतना भी होश न रहा कि दुःसाहस की भी एक सीमा होती है!

परन्तु यह अभियोग, यह ख्याल क्या मृनाल के विरुद्ध था? नहीं! लीलावती के मन में जो अभियोग का दरिया बह रहा था वह लड़के के विरुद्ध नहीं था। जिस बहू के कारण उनकी सारी जिन्दगी छिन्न-भिन्न हो कर धूल में जा मिली, जिसके कारण भविष्य अंधकारमय हो गया, अब कहीं, किसी को मुँह दिखाने का रास्ता न रहा, उसी बहू के विरुद्ध सारा अभियोग था।

उनका अपना लड़का भी इसी एक ही अपराध के लिए अपराधी है, और बहू से विद्या-बुद्धि तथा उम्र में हर तरफ से बड़ा ही है, इस बात का लीलावती को जरा भी ध्यान न रहा। बार-बार सोचा—बहू! उनकी बहू ही बेहद लापरवाह, नासमझ, ज़िद्दी और नखरेबाज है।

वहू होते हुए भी उसमें वहू जैसा संकोच या कुण्ठा नहीं थी। उसे अभिमान वहुत था। जबकि ऐसा होना नहीं चाहिए था।

उसके था कौन जो इतनी लाडली हुई है ? किस बचपन में तो माँ मरी थी, उसके बाद बाप। ऊपर-नीचे के भाई-बहन। एक को मौसी ने पाला, एक को बुआ ने। यह तो हाल था !

फिर भी ज़रा से में मान-अभिमान, मेरे मृणाल के तो नाक में दम कर रखा था !

हाँ, अब लीलावती यही सब सोच रही है। बहू के डर से मेरा लड़का तो तटस्थ रहता था, वरना इस साँप-बिच्छू के देश में रात गए तक तालाव के किनारे कभी बैठा रह सकता था ?

हमेशा ही यही हाल था !

हमारी बहू, घर बैठ कर प्रेम नहीं कर सकती थी। हर समय यही फ़िक्र कि कैसे बाहर निकला जाय। कहा करती, 'बाप रे ! इस छोटे से कमरे में बैठे-बैठे सिर गरम हो गया है। ज़रा रास्ते पर टहल आया जाय।'

औरत हो तुम, चली रास्ते पर सिर ठंडा करने। क्यों ? लीलावती के पास सिर नाम की चीज़ नहीं है क्या ? पर लीलावती तो यह बात मुँह पर नहीं लाती हैं ? अब बोलो ? हुआ दिमाग़ ठिकाने ? लो, अब लगाओ—जितनी हवा सिर पर लगानी हो, लगाओ।

आहिस्ता-आहिस्ता लीलावती के मन की धारणा ने जो रूप धारण करना शुरू किया उससे लगता था, ज्योति ने जान-बूझ कर ऐसा किया है। सोचा करती, लड़के का मुँह देखतीं तो छाती फटने लगती उनकी।

ज्योति का खो जाना अगर अकस्मात् मृत्यु के माध्यम से हुआ होता तो शायद लीलावती खो गई बहू की सारी त्रुटियों को भूल गई होती। और उसमें क्या-क्या गुण थे, उसी की सूची लिए फिरती होती।

पर ज्योति मृत्यु की पवित्रता के रास्ते तो खोई नहीं। खोई है एक कीचड़ से भरे कुण्ड में। इसीलिए लीलावती को उसके प्रति ममता नहीं, घृणा जाग रही थी। करुणा के स्थान पर वितृष्णा।

फिर भी शोक, दु:ख और लज्जा से लीलावती मरी-सी जा रही थी। लीलावती के घर की बहू को गुण्डे लूट कर ले गए हैं, यह अनुभूति लीलावती को हर पल साँप-सी डस रही थी।

लड़के का काला पड़ता उपवास-क्लिष्ट चेहरा देखतीं तो दिल फट जाता, पर उठ कर उसके खाने का प्रबन्ध करे यह भी नहीं होता था।

जंजीर चढ़ी थी, रसोई के दरवाज़े पर, वैसी ही जंजीर अभी तक चढ़ी है। लीलावती उसे खोलें, ऐसी हिम्मत नहीं हो रही थी। लग रहा था, उसे खोलते ही कोई अट्टहास कर उठेगा। मानो कोई अपनी मोटी वीभत्स उँगलियों से लीलावती का गला धर दबोचेगा।

उसी तूफानी शाम से पहले, उसी रसोई में बैठ कर पूड़ियाँ बेली थी 'ज्योति' नाम की लड़की ने। वही लड़की अब भय का कारण बन गई है। अभी भी वही पूड़ियाँ उसी चौके में थाली से ढँकी पड़ी हैं।

तब फिर लीलावती क्यों कर उस रसोई का किवाड़ खोल सकती हैं ?

इसके अलावा—एक कारण और है। हो सकता है वही मुख्य कारण हो जिसे अभी तक लीलावती मुख्य है या नहीं समझ पाने में असमर्थ है—वह कारण है—जिस लड़के के लिए सिर उठा कर रसोई में जाएँगी वह लड़का क्या कहेगा ? वह क्या माँ को धिक्कारते हुए यह नहीं कह बैठेगा, 'छिः-छिः माँ, ज्योति खो गई और तुम यथानियम रसोई में घुस कर खाना बनाने की तैयारी में जुटी हो ?'

अगर कह बैठे, 'माँ, मेरी खाने की इच्छा नहीं है, खाने की क्षमता नहीं है, मुझसे अनुरोध करने मत आना।'

तब ?

इसी आतंक ने लीलावती को रोक रखा है। इसीलिए लीलावती बूढ़े पति की बात सोच कर भी ठिठक जाती हैं। लड़के की तरफ आँख तक नहीं उठा रहीं हैं। एक तरफ मुर्दे की तरह पड़ी हैं।

लेकिन यह तूफानी शाम को बीते समय कितना हुआ है ? कितने युग बीत गए ?

कैलेण्डर के पन्ने तो बता रहे हैं सिर्फ परसों शाम की बात है। लेकिन वास्तव में क्या यह सच है ?

लग रहा है कितने युग बीत चुके हैं।

क्या तीन वक्त खाना न खाने पर आदमी की यह हालत होती है ? लीलावती को व्रत-उपवास करने की आदत है। अगर लीलावती का यह हाल है तो मृणाल का क्या हाल होगा ? क्या हाल होगा भक्तिभूषण का ?

कम से कम ज़रा-सी चाय...चाय ही...

चाय की बात याद आते ही लीलावती का हृदय रो उठा और जिस बहू के विरुद्ध मन में इतनी शिकायतें जमा हो रही थी, अचानक उसका चेहरा याद आते ही फफक-फफक कर रो पड़ीं।

चाय पीने पिलाने का शौक था ज्योति को। बेवक्त ही हँस-हँस कर पूछ बैठती थी, 'माँ ! आपकी अवश्य ही चाय पीने की खूब इच्छा हो रही है न ?'

अगर लीलावती कहती, 'बेटा, तुम यह क्यों नहीं कहती हो कि तुम्हारी खुद की इच्छा हो रही है ?'

ज्योति तुरन्त हँस कर उत्तर देती, 'ऐसा कहना अच्छा नहीं समझा जाता है।'

उसके बाद ही बड़े जतन से चाय बना लाएगी। ज्योति जब से आई है लीलावती चाय बनाना ही भूल गई हैं।

चाय की व्यवस्था की ओर ताकते नहीं मन रहा था, फिर भी आँसू पोंछ कर लीलावती ने उस भूले काम को करने के लिए हाथ बढ़ाया। डरते-डरते, दो पत्थर से

स्तब्ध मनुष्यों के सामने ले कर पहुँचीं।

स्तब्ध—पत्थर!

यहाँ शाम के बाद आदमी स्तब्ध न बैठे तो करे क्या? कुछ करने का कोई उपाय है? रास्ता ही क्या है? थाना, पुलिस? बदनामी रटने के अलावा और कौन-सा महत्व-पूर्ण कार्य होगा?

परन्तु चाय का प्याला क्या पत्थर बन गए मनुष्यों को सचेतन कर गया? उन्हें क्या झटका-सा लगा? लीलावती के हाथों से प्याला लेकर उन्होंने क्या पटक दिया?

और बोल उठे, 'चाय लाई हो? चाय? तुम्हें शर्म नहीं आई? शर्म?'

अद्भुत आश्चर्य!

इन लोगों ने ऐसा कुछ नहीं किया।

बल्कि बड़े आग्रह से हाथ बढ़ा कर ले लिया।

केवल मृनाल ने पूछा, 'अपने लिये रखा है?'

यह क्या मृनाल के गले से निकली आवाज है? लीलावती को लगा यह किसी और की आवाज है।

लीलावती ने सोचा, मेरे बेटे का जीवन व्यर्थ हो गया। उसके बाद सोचा, मेरे लड़के का ऐसा ही स्वभाव है, मुझे यह सोचना पड़ रहा है वरना एक औरत के कारण समूचे एक पुरुष का जीवन कहीं व्यर्थ हो जाता है?

यह काली होती शीशे वाली लालटेन की धुँधली रोशनी, यह अंधेरी-अंधेरी-सी विशाल जीर्ण-शीर्ण अट्टालिका, यह बहकी-बहकी हवा और वाक्यहीन तीन पत्थर बन गये प्राणी।

ऐसी स्थिति में 'व्यर्थ हो जाने' के अलावा कुछ सोचा भी नहीं जा सकता है।

लीलावती ने सोचा, इस बहू के ऊपर जान छिड़कने वाले लड़के को मैं क्या सान्त्वना दूँ? परन्तु उन्होंने सोचा, कलकत्ते लौटने पर शायद संभल जाए।

परन्तु उसे क्या यहाँ से हिलाया जा सकेगा?...

आठ

'कल तड़के जाने वाली ट्रेन से चल देना है।' स्तब्ध हो गये भक्तिभूषण ने अचानक फटी आवाज में इस आदेश की घोषणा की—'यहाँ पड़े रहने के कोई मतलब नहीं होता है।'

ऐसे आदेशात्मक स्वर भक्तिभूषण कम ही निकाला करते हैं। करते ही नहीं हैं,

कहा जाए तो ठीक होगा, इसलिए बाकी दोनों चौंक पड़े, लेकिन कोई कुछ बोला नहीं।

मृनाल अभी तक अपने कमरे में बैठा था, जहाँ परसों रात तक ज्योति उसके पास थी। न जाने कहाँ से मुट्ठी भर मदार के फूल ला कर, धूप की एक रिकाबी में रख दिया था ज्योति ने। फूल अभी भी है। ये फूल जल्दी सूखते नहीं है। मृनाल सोच रहा था—सूखे क्यों नहीं? इनमें ज़हर है इसलिए क्या?

उस कमरे में घुसते ही लगा था यहीं कहीं पड़ा रहूँ। ज्योति के हाथों से सहेज कर रखे बिस्तर पर हाथ लगाए बगैर, कहीं जमीन पर।

कितने आश्चर्य की बात है! दुनिया के ऊपर से इतना बड़ा तूफ़ान आ कर निकल गया, लेकिन चादर अपनी जगह पर वैसी का वैसी बनी है। टस से मस तक नहीं हुई। घूमने जाने से पहले हाथ फेर-फेर कर ज्योति ने एक-एक सिलवटें तक मिटा दी थी।

इसी कमरे में पड़ा रहूँगा, यह बात सोची थी। लेकिन ज्यादा देर तक बात टिक न सकी। उठ कर पिता के कमरे में चला आया। और उसी समय भक्तिभूषण ने घोषणा की, 'कल तड़के जाने वाली गाड़ी से चल देना है।'

चले जाना है।

यहाँ से चले जाना होगा।

मृनाल के दिल पर मानो हथौड़े से चोट होने लगी। यहाँ से चले जाने के मतलब हुआ ज्योति को यहाँ छोड़ कर चले जाना।

मृनाल नहीं जा सकेगा।

मृनाल यहीं रह कर ज्योति को ढूँढेगा। ढूँढ़ निकालेगा। पर मृनाल कुछ बोला नहीं।

भक्तिभूषण ने बेटे की तरफ देख कर कहा, 'तुम्हारी छुट्टी भी तो खत्म हो गई।'

छुट्टी!

उसके खत्म होने का प्रश्न!

विस्मित सा मृनाल मानो सिकुड़ कर इतना-सा हो गया।

इस समय पिताजी को याद आ रही है कि मृनाल दफ्तर जाता है। उसकी छुट्टी खत्म होने का भी सवाल उठता है। इसके मतलब, कल सुबह की गाड़ी से कलकत्ता वापस जा कर यथायथ भाग-दौड़ कर के ऑफिस जाए, खाए-पिए, नहाए धोये और सोये।

पिताजी इतनी आसानी से यह बात सोच सके? जब कि मृनाल सोच रहा है कि अब कभी भी 'इतनी आसान बात' सम्भव न हो सकेगी।

मृनाल ने कुछ कहना चाहा लेकिन कह न सका। लीलावती ने कहा।

बोली, 'जाते ही अभी बेचारा काम पर नहीं जा सकेगा। छुट्टी बढ़ानी होगी।'

लीलावती द्वारा कहा 'बेचारा' शब्द मृनाल के कानों में दुर्नियमित-सा लगा। ज्योति नहीं है पर मृनाल का 'मूल्य' है, यह नहीं सोचा जा सकता।

भक्तिभूषण बोले, 'यूँ भी तो छुट्टी बाकी नहीं थी।'

लीलावती बोली, 'फिर भी। अवस्था समझा कर दरख्वास्त करनी पड़ेगी।'

'अवस्था समझा कर?'

भक्तिभूषण ने एक लम्बी सांस छोड़ी, 'कौन-सी अवस्था समझाओगी तुम?'

लीलावती ने सिर झुका लिया। ठीक ही तो कह रहे हैं। कौन-सी अवस्था समझाएँगी?

यहाँ आकर एक दिन की बीमारी में ज्योति मर जाती तो भी सान्त्वना मिलती। वह बात चिल्ला-चिल्ला कर कही जा सकती थी। उस शोक में और लोग भागीदार हो सकते थे। अवस्था समझाई जा सकती थी।

ज्योति के माँ-बाप नहीं हैं, फिर भी भाई-भौजाई है। उनसे क्या कहा जाएगा?

वही बात बतानी होगी। सोचा, और लीलावती को तभी लगा, घर का चप्पा-चप्पा ठीक से ढूंढ़ना चाहिए।

अगर बाद में आकर कहीं छिप कर बैठी हो? अगर शर्म से मुँह न दिखा पा रही हो?

हड़बड़ा कर उठ बैठी। भक्तिभूषण बोले 'कहाँ जा रही हो?'

'छत की सीढ़ी एक बार और देख आऊँ।'

'पागलपन क्यों करती हो?' बोला मृनाल।

लीलावती ने उत्तर दिया—'अगर मौका पाते ही यहाँ आकर बैठी हो? अगर शर्म से...'

लीलावती की आवाज स्वाभाविक नहीं थी। फटी-फटी यह आवाज सुन कर मृनाल के मन में बिजली-सी कौंध गई।

ठीक! ठीक तो है! यह बात तो मुझे पहले ही सोचनी चाहिए थी।

इस विशाल मकान के ढाँचे के कोने-कोने में कहाँ क्या गड्ढा है, मृनाल को कहाँ इतना पता है?

हालांकि हर कोना ढूंढा जा चुका है, पर एक ही बार न? उसके बाद भी तो आ सकती है। मृनाल भी माँ के साथ उठ आया।

भक्तिभूषण बोले, 'टार्च लेते जाओ।'

उसके बाद मृनाल माँ के आगे-आगे चला। सीढ़ी देख आया। और भी कुछ जगहों पर देखा।

अचानक लीलावती बोल उठी, 'गौशाला नहीं देखी गई।'

'गौशाला?'

मृनाल ने आश्चर्य से देखा। सोचा, गाय कहाँ है, जो गौशाला?

लेकिन गौशाला तो है।

लीलावती बोली, 'गाय नहीं है, तभी तो सोच रही हूँ, अगर आदमी आकर...' बात पूरी न कर सकीं।

एक ही भावना के प्रवाह में बह रहे दो प्राणी परस्पर एक-दूसरे को समझ रहे थे, लेकिन जी खोल कर कह नहीं सकते थे, दिल के उस खुले दरवाज़े पर ज्योति नामक

जीवन्त फुलझड़ी ने, बाहर से छिटकनी चढ़ा दी थी ।

उन लोगों ने रसोईघर का पीछे वाला दरवाजा खोला ।

बहुत दिन से इस्तेमाल में न आने वाली, गौविहीन गौशाला की ओर कदम बढ़ाए।

भक्तिभूषण नहीं गये । भक्तिभूषण ने कल से सहस्रों बार इस मकान को चारों ओर से देख डाला था । छप्पर टूट कर गिर रही उस गौशाला को नहीं देखा था । पर इसीलिए वहाँ मिलेगी, ऐसा भी तो नहीं ?

भक्तिभूषण उठे तक नहीं ।

उन्होंने देखा, आँगन के उधर से दोनों निकल कर चले गये ।

उसके क्षण भर बाद ही भक्तिभूषण ने एक भयकर चिल्लाहट सुनी ।

मृनाल की आवाज । भक्तिभूषण को ही बुलाया था । केवल चिल्ला उठा है, 'पिताजी ।'

बुलाया था या आर्तनाद कर उठा था ? भक्तिभूषण के भाग्य से क्या अब काला नाग निकल आया ? टुटही गौशाला के किसी कोने में होगा ।

यही होगा । और कुछ नहीं होगा ।

तैयार हो कर ही भक्तिभूषण आगे बढ़े ।

सिर्फ इतना सोचते हुए चले कि न जाने किसे पड़ा हुआ देखेंगे ।

मृनाल या लीलावती को ?

पर नहीं ! मृनाल नहीं, लीलावती नहीं । लेकिन कोई लेटा जरूर है । टूटी गौशाला के भीगे लकड़ी-बाँस के ढेर पर लेटा था । साड़ी का निचला हिस्सा कीचड़ से काला हो गया था । बाकी हिस्सा कीचड़ के काले छिट्टे से और भी ज्यादा गन्दा लग रहा था ।

भक्तिभूषण देखते ही चिल्ला पड़े, 'वह कौन है ? कौन है ?'

नौ

परन्तु उन्होंने जिनसे पूछा, वही क्या जानते हैं कि वह कौन है ?

उन्होंने भी तो बेड़े की ओट से साड़ी देखी थी और कूद पड़े थे । उसी के बाद मृनाल का आर्तनाद सुनने में आया था, 'पिताजी ।'

और भक्तिभूषण चिल्लाए थे, 'वह कौन है ? कौन है ?' फटी-फटी आवाज में लीलावती बोली, 'बेटा, टार्च जरा ठीक से दिखाओ । देखूँ, मेरी बहूरानी है या नहीं ।'

लेकिन मृनाल ने टार्च नहीं दिखायी । वह सोना-लगी भीगी दिवार से पीठ टेके खड़ा रहा । लीलावती ने भी यह न देखा कि वहाँ बैठ रही हैं । बैठ कर हताश हो कर

बोलीं, 'भगवान् क्या हमसे छल कर रहे हैं ?'

यह सवाल पूछ किससे रही थी वह ? उसका उत्तर है किसके पास ? यहाँ तो एक भयंकर निरुत्तर सिर उठाये खड़ा है ?

वह कौन है ? वह आई कहाँ से ? उसे लेकर हमलोग यहाँ क्या करेंगे ? वह ज़िन्दा है या नहीं ? भगवान् छल कर रहे हैं क्या ?

बहुत देर बाद वही भयंकर प्रश्न भक्तिभूषण ने पूछा, 'उसके जान है या नहीं ?'

प्रश्न ! केवल प्रश्न ही !

कौन हिम्मत करके यह देखेगा कि उसके जान है ? वह क्या ज्योति है ? वह क्या इस घर की जीवन्त पुतली है, जो उसे देखते ही इस घर का लड़का हृदय से लगा कर उठा ले आएगा ? उसके बेहोश शरीर में जान है या नहीं, इस बात का पता करने के लिए कौन व्याकुल होगा ? और इस घर के दूसरे दो सदस्य अपनी सारी अकुलाहट के साथ क्या उसके शरीर पर हाथ फेरेंगे, उसका सिर सहलाएँगे और आवाज़ लगाएँगे —'बहूरानी ! बहूरानी !'

वह ज्योति नहीं है। वह दूसरी कोई लड़की है।

फिर भी निरुपाय हो कर ही उसे उठा कर लाना पड़ा। इस घर के लड़के को ही उठाना पड़ा जो कि साड़ी का एकांश देखते ही झपट पड़ा था, चिल्ला उठा था और बाद ही पत्थर-सा स्तम्भ रह गया था।

और कौन लाता ? किसमें इतनी शक्ति है ?

जो कुछ शक्ति थी भी, अब उतनी भी नहीं बाकी थी।

मृनाल में ही कहाँ थी ? फिर भी मृनाल को करना पड़ा।

यौवन की जिम्मेदारी भी तो एक चीज़ है ? 'न कर सकूँगा' शब्द उसके लिए नहीं है।

दस

'जान नहीं है।' आँगन में ला कर लिटा देने पर भावविहीन स्वरों में लीलावती ने कहा, 'जान नहीं है।'

इसके मतलब हुए, भयंकर एक मुसीबत आकर और सवार हो गई।

क्या करेंगे इस मृतदेह का ?

कल सुबह की गाड़ी से चले जाने की बात है।

युद्ध में घायल-हारे सिपाही की तरह, आँधी में घायल, पंख-टूटे पक्षी की तरह,

उन दो कमरों वाले फ्लेट में पहुँचेंगे और ज्योति को ढूँढने का नाटक करेंगे। इससे ज्यादा तो कुछ सोचा न था।

उसमें विश्राम पाने की उम्मीद थी। उसमें सूनेपन का स्वाद था।

लेकिन यह क्या ? यह कौन है ?

यह क्यों मृनाल के टूटे घर में मर कर पडे रहने के लिये आ गई ?

इसके पीछे कौन सा रहस्य है ?

'माँ, थोड़ा सा गरम पानी दे सकोगी ?' धीरे से मृनाल ने पूछा।

'दो।' कहते नहीं बना इसीलिए कहा, 'दे सकोगी ?' देख रहा था लीलावती का लालटेन पकड़ा हाथ काँप रहा है।

भक्तिभूषण ने माथा अंगुली से छुआ। बोले, 'क्या होगा ? बहुत पहले ही खत्म हो गई है।'

मृनाल ने हाथ उठा कर मना करने जैसा इशारा किया। इशारे से बोला, अभी यह बात नहीं। उसके बाद खड़े होते हुए बोला, 'माँ, एक सूखा कपड़ा पहना सकोगी ?'

अस्फुट स्वरों मे लीलावती ने पूछा, 'है ?'

'लगता तो है।'

'कपड़ा लाती हूँ।' जल्दी से चली गईं। एकाएक लीलावती के हाथ-पाँव में चेतना आ गई। वह देह, मृतदेह नहीं है, ऐसी आशा ने भयंकर रूप से शान्ति प्रदान की। कृतज्ञ हुईं, ईश्वर के आगे कृतज्ञ हुईं, मृनाल के पास, इस लड़की के पास।

क्षण भर में स्टोव जला कर पानी रखा, फिर अपनी एक साड़ी और शमीज ले आईं। मृनाल वहाँ से हट गया। भक्तिभूषण को उन्होंने वहाँ से हटने नहीं दिया, बोलीं 'जरा सिर तो पकड़ना तुम। मुझे हिलाते-डुलाते डर-सा लग रहा है।'

बोलीं, 'उसे कोई होश है, जो शर्म आएगी ?' उसके बाद ही कुछ सोच कर बोलीं 'तुम ही क्यों शर्मा रहे हो ? लड़की की तरह है। बहूरानी की उम्र की होगी...'

लगा, अनजाने में होंठों पर से यह नाम फिसल गया। अपने को संभाल न सकीं फूट-फूट कर रो पड़ीं। खूब सावधानी से उसे, भीगे कपड़े बदल कर सूखे कपड़े पहना दिए। अनुभव कर सकीं कि उसमें जान है।

मुसीबत का पहाड़ समतल मालूम पड़ रहा है। पहले से एक पहाड़ खड़ा था, इस निश्चिन्तता की हवा लगने से हल्का हो गया।

मानो इस दुनिया में एक ही समस्या थी, वह थी इस देह की। अगर यह मृतदेह होती, तो इसे लेकर क्या करतीं ?

वह समस्या चुक गई। अतएव पहाड़ भी हट गया। बाद में यह जिन्दा रहेगी या नहीं, यह बात बाद में भी सोची जा सकती है। जिन्दा है, खासी उठ-बैठ रही है। भीगे कीचड़-सने कपड़ों की वजह से समझ में आ नहीं रहा था। अब सूखे कपड़ों के उठने-बैठने से पता चल रहा है।

मृदु, मन्थर, अनियमित। फिर भी काम चल रहा है।

ग्यारह

चिकित्सा के नाम पर गरम पानी से धो-पोंछ कर गरम सेंक, और दवाई के नाम पर भक्तिभूषण को नियमित दिया जाने वाला मकरध्वज एक चम्मच। व्यवस्था के नाम पर मोटे गद्दे के बिस्तर पर सुला दिया गया। यह क्या कुछ कम था?

रास्ते पर गिर कर मरने वाला भाग्य ले कर जो लोग मृत्युपथ की यात्रा करते हैं, उनके लिए यही काफी है, यही परम चिकित्सा है। उसी की मदद से मृत्युपथ की यात्रा करने वाली को जीवन के आलोकित कक्ष में वापस खींच लिया जा रहा है।

परन्तु इससे इन्हें किस बात की खुशी? उसके नि.श्वस शरीर में स्पन्दन देख-कर लीलावती इतने आग्रह के साथ झुक कर क्या देख रही हैं? क्यों बार-बार खाट के किनारे आ कर खड़ा हो रहा है लीलावती का पुत्र?

और लीलावती के पति क्यों पांच-पांच मिनट पर उसकी नब्ज देख रहे हैं?

'इसी तरह अगर बहूरानी मिल जाती?'

फुसफुसा कर लीलावती बोली।

किसी को सुनाने के लिए नहीं, अपने को ही सुनाते हुए बोली।

'लग रहा है, जैसे बहूरानी ही आई हैं।'

फुसफुसा कर नहीं, मन ही मन।

'हे भगवान्, उसे अगर इसी तरह से ला देते।'

बारह

यह कमरा लीलावती की सुहागरात का कमरा है। यह पलंग वही ऊँचे पाए वाला पुराना पलंग है। उसी पर इस ढूंढ़ कर पाई गई लड़की को लिटा दिया गया था। क्योंकि उसे ऐसे ही आराम की जरूरत थी।

परन्तु क्या उसे जरूरत थी, इसलिए लिटाया गया था?

वह अगर वर्तन मांजने वाली गोपाल की माँ की समगोत्र होती? लीलावती पलंग पर मोटे गद्दे बिछे बिस्तर पर ला कर लिटा देता लीलावती का बेटा?

बार-बार आकर पलंग के पास खड़ा होता क्या?

खड़ा न होता। लिटाता भी नहीं। लिटाया है क्योंकि मृनाल के ही समगोत्र का है इसलिए। उसके चेहरे की रेखाओं से, उसके शरीर की बनावट से, उसके पहनावे से यही घोषित हो रहा है इसलिए।

उसकी मुँदी हुई आँखों ने मौनता के आवरण में अपने को ढँक रखा है कि फिर भी मानो कहना चाह रही हैं—'मैं तुम लोगों में से एक हूँ।'

'तू और कितना जगेगा—जा, जाकर सो जा।'

कल से आज इस रात के बीच, पहली बार लीलावती ने सहज ढंग से लड़के के साथ बात की।

मृनाल भी सहज भाव से ही बोला। शायद वह भी पहली बार बोला—'इससे अच्छा है कि पिताजी सो जाएं। पिताजी का जरा सोना जरूरी है।'

'नहीं, नहीं, मैं ठीक हूँ।' बोले भक्तिभूषण।

परन्तु फिर दो-एक बार अनुरोध करने पर जाकर लेट गए, बगल वाले कमरे में। जिस कमरे में भक्तिभूषण के कुँवारे चचेरे बड़े भाई हमेशा से एक पतले से तख्त पर लेटा करते थे।

लेटने पर पहली बार उन्हें याद आया—कल से सिर्फ एक प्याला चाय के अलावा और कुछ नहीं खाया है।

तेरह

लीलावती ने लड़के से जाकर सो जाने का अनुरोध किया था। कहा था, 'मैं ठीक चौकसी रखूँगी,' लेकिन झपकने लगी। बार-बार अपने को संभालती और याद आ-आ जाता कि परसों से कुछ भी नहीं खाया है।

दिन के समय जाने कब एक बार भक्तिभूषण ने धीरे से उदास स्वरों में कहा था, 'जरा-सा चाय पीते, तो...'

जरा-सा चाय पीने पर क्या होता, यह न कह सके थे। लीलावती फफक पड़ी थी, 'बहूरानी के हाथों सजाया चाय का सामान, मैं अपने हाथों से इधर-उधर नहीं कर सकूँगी। वह कितने शौक से यहाँ लाने के लिए नया सेट खरीद लाई थी...।'

भक्तिभूषण अप्रतिभ हुए। 'रहने दो, रहने दो,' कह कर भाग खड़े हुए थे।

उन्हें भी याद आया, सचमुच ही ज्योति ने कुछ काँच के बर्तन तो खरीदे थे।

भक्तिभूषण ने कहा था, 'घर में इतनी कप, प्लेट, गिलासें हैं, फिर भी तुम खरीद लाई बहूरानी?'

ज्योति ने हँसते हुए कहा था, 'ये मेरे गांव की ससुराल के लिए हैं पिता जी। देख नहीं रहे हैं, कैसे मोटे-मोटे हैं, देहाती किस्म के। वहीं रख आऊँगी।'

यहाँ आते ही महान् उत्साह के साथ, दादिया सास के भंडार-घर का ताख झाड़-पोंछ कर, पुराना अखबार बिछा कर सारा सामान सजा डाला था। बगल-बगल सजायी थी चीनी की बोतल, चाय का डिब्बा, कन्डेन्स मिल्क, भक्तिभूषण को हॉर्लिक्स।

हँस-हँस कर भक्तिभूषण बोले थे, 'माँ जननी ने क्या यहीं रहने का निश्चय किया है? दो-चार दिन के लिए...'

ज्योति ने चेहरे को उज्ज्वल करके कहा था, 'वाह! तो क्या पेड़ के नीचे रहने वालों की तरह रहना होगा? दो-चार दिन ही ठीक से रहेंगे। ठीक से सजा कर रखूँगी।'

उसी दिन शाम को भी चाय निपट जाने पर सब ठीक से सजा कर रखा था। सब चीज ठीक से। लीलावती ने उन्हीं को उठा हटा-कर चाय बनाई थी।

आज झपकते-झपकते बार-बार सोचने लगी, 'कल सुबह उठ कर अच्छी तरह से चाय बनानी होगी। लड़के को तकलीफ हो रही है। वे भी बूढ़े आदमी हैं।'

सोचा, यह तो साफ समझ में आ रहा है कि कल सुबह जाना नहीं होगा।

अब यह सिर पर आ पड़ी लड़की बड़ी अन्यायी लगी। तुझे और कोई जगह नहीं मिली?

यह मुसीबत, ऐसे हाहाकार पर और मुसीबत बढ़ाने आ गई? यहां ऐसा कोई अस्पताल भी कहां है कि तुझे जा कर भर्ती कर के चली जाऊं? अतएव जब तक तू उठ कर खड़ी नहीं होती है, तुझे गले में लटकाए फिरना पड़ेगा हमें।

ओह! यह भी खूब सजा है, जबरदस्त सजा है! न जाने किसका मुंह देख कर कलकत्ते से चले थे। लग रहा था कलकत्ते पहुँचते ही हर बात सुलझ जाएगी। कलकत्ते की पुलिस कुछ करे शायद।

लेकिन अब तो कलकत्ता भी दूर खिसकता जा रहा है। यह लड़की जबरदस्ती मौके का फायदा उठाने आ गई है।

बहूरानी को खो कर, यह किसे मैं पलंग-बिस्तर पर लिटा कर खातिरदारी कर रही हूँ।

मरने को मैं गोशाले की तरफ गई—अचानक लीलावती सिहर उठी।

सोचा, ईश! अगर न गई होती?

चौदह

लालटेन की रोशनी हवा लगने से काँप रही थी। कमरा आधा अँधेरा हो रहा था।

सीलावती पलंग के बाजू से टिकी बैठी झपक रही थी। मृनाल झपक रहा था, विशाल पीठ वाली एक बड़ी-सी कुर्सी पर। हिलने-डुलने पर कँच-कोंच आवाज होने पर भी बैठा जा सकता है। बीस साल पहले छोड़-छाड़ कर चले जाने के अपराध पर अभिमान कर के टुकड़े-टुकड़े नहीं हुई है।

आवाज बल्कि उपकारी सिद्ध हो रही है। जगे रहने में मदद कर रही है।

बीच-बीच में टार्च की रोशनी डाल कर देखना पड़ रहा था कि आँख खोल कर पड़े-पड़े यह न सोच रही हो कि है कहाँ। अथवा अचानक छाती का उठना-बैठना स्थिर न हो गया हो।

तन्द्राच्छन्न चेतना में सोचने की इच्छा हो रही है, बिस्तर पर ज्योति लेटी है। वह मिल गई है। डर कर दिशाहीन कहीं छिटक कर चली गई थी, फिर लौट आई है। आते वक्त पानी में भीगी है! तकलीफ उठाई है और बेहोश हो गई है।

बेहोश तो होगी ही। वह तो घर की सबसे सुकुमार थी, सबसे प्यारी थी, और सबसे छोटी थी। कहीं इतना कष्ट वह सह सकती है?

हम रात के अंधेरे में भटकते रहे, इसीलिए सोच रहे हैं वह और कोई है। सुबह की रोशनी में जब सब कुछ स्पष्ट हो जाएगा; तब देखूँगी वह ज्योति बन गई है। आँख खोल कर देख कर कह रही है, 'पानी पीऊँगी।'

सोचने की इच्छा हो रही है। सोचना अच्छा लग रहा है। नींद और जागरण, स्वप्न और सच्चाई के झोंके में झूलते-झूलते मृनाल की रात कट गई। धीरे-धीरे।

ट्रेन पकड़ने का प्रश्न आज नहीं उठेगा। अतएव इस समय सो लेना कैसा रहेगा? तब तक ज्योति स्वस्थ हो जाए। उठा, उठ कर ज्योति की तकिया में मुँह छिपा कर अपने बिस्तर पर लेट गया। यह बिस्तर ज्योति बिछा गई थी।

पन्द्रह

अभी भी तो कोई आहट नहीं लग रही है, सीलावती ने भोर की रोशनी की तरफ देखा। इसी मौके का फायदा उठा कर नहा आऊँ, फिर चाय बनाऊँ। आज कुछ खाना भी पकाना ही पड़ेगा। एक को तो दिया है तो क्या और सबकी अवहेलना करूँ?

पति-पुत्र को भी खो बैठूं क्या ?

मन में ज़ोर लाते हुए उठीं। मानो इसी मरती लड़की ने उनमें ताकत भर दी।

उठते ही देखा, आँगन के बेड़े का दरवाजा धकेल कर गोपाल की माँ घुस रही है।

लीलावती धप्प से बैठ गईं। उन्हें लगा, सबको सब कुछ पता चल गया है।

जान लिया है कि कुछ दिनों के लिए, मौज करने के लिए आये भक्तिभूषण घोष की गृहस्थी के मुंह पर कालिख लग गई है, उनका यथासर्वस्व खो गया है।

अब सब कोई धिक्कारेंगे।

कहेंगे, छिः छिः ! यह है दम तुम लोगों में ? गाँव के मकान में रहने आये तो पड़ोसियों के कान के पर्दे फाड़ कर ग्रामोफोन पर गाना नहीं सुना है ? बड़ी-बड़ी मछलियाँ खरीद ला कर नहीं खा रहे थे ? हँड़िया भर-भर मिठाइयाँ ?

गाँव के दीन-हीन बिरादरी वालों की तरह करुणाभरी दृष्टि डाल कर कहा नहीं था—'अच्छे हैं न ? यहीं कुछ दिनों के लिए घूमने आ गए हैं। बहूरानी की इच्छा थी...'

अब ?

अब अगर लोग पूछें, 'क्यों जी, कहाँ गईं तुम्हारी बहूरानी ?'

गोपाल की माँ को देख कर लीलावती घबड़ा उठीं।

गोपाल की माँ को देख कर उनके पाँव के नीचे से ज़मीन सरक गई।

परन्तु गोपाल की माँ पड़ोसियों की प्रतिनिधि बन कर नहीं आई थी। वह परसों रात की भयावह दृश्य की वार्ता ले कर आ पड़ी है।

'तो माँ, तुम लोग जान से बच गई हो। मैंने सोचा डर के मारे चली गई हो। क्या भयंकर, माँ कि क्या कहूँ ? परसों रात से, सोना नहीं, खाना नहीं माँ, सिर्फ भयंकरता ही देख रही हूँ।'

गोपाल की माँ एक साथ ढेरों बात करती रहती। उस दिन के हमले से किसका क्या-क्या नुकसान हुआ है उनका विशद वर्णन करती और रह-रह कर सिर पीटती, 'माँ, तुम लोग तो आराम से कलकत्ते में बैठी हो, तुम लोगों को कुछ पता नहीं है। हमलोग इसी पाप के साथ रह रहे हैं। घर-गृहस्थी क्या चला रहे हैं, समझ लो कि यम के मुँह में पड़े हुए हैं।' हताश हो कर टूटने लगती, 'रह-रह कर इसी तरह से आ कर झपट पड़ते। किसी की गाय-बछड़े नहीं बच पाते। सात रुपए दे कर उस महीने मैंने बछड़ा खरीदा था, माँ, उसे भी खींच ले गए। जिन्होंने गरीब का सर्वनाश किया, उनका कभी अच्छा होगा, माँ ? उन्हे यम नहीं देखेगा क्या ? हाथ-पाँव कट-कट कर नहीं गिरेंगे क्या ? दोनों आँखें नहीं फूटेंगी ?'

गोपाल की माँ रो-रो कर पागल हो रही थी, 'उस पर मुँहजला आसमान सिर पर जैसे टूट पड़ा। कहाँ का आदमी कहाँ, कहाँ की चीज कहाँ—आँख-कान में अंधेरा छा गया।'

'बात तुमने ठीक कही है।'

गोपाल की मां बोली, 'दो दिन नहीं आ सकी मां ! आज सोचा, चल कर देख आऊं, मां है या चली गई ।'

परिचित जगह से झाड़ू निकाल कर ठोंकने लगी, प्रस्तुति के तौर पर।

लीलावती डरी। गोपाल की मां को भगाने की कोशिश करने लगी।

लीलावती बोली, 'रहने दो गोपाल की मां, आज तुम्हारा मन अच्छा नहीं है, आज कुछ करने की जरूरत नहीं है।'

गोपाल की मां इस करुणा को ग्रहण नहीं करती है। बोली, 'आई हूं जब, सफाई कर ही के जाऊं।'

हर रोज एक रुपया पारिश्रमिक दे रही है लीलावती, इस काम की अवहेलना नहीं की जा सकती है।

आंगन में झाड़ू लगाते-लगाते बक-बक करती रही गोपाल की मां, 'सोचा था, तुमसे जो रुपए मिलेंगे, उनसे एक और 'नया' बछड़ा खरीदूंगी। पर भाग्य ! दुखियारी का भाग्य है।'

लीलावती उस क्षुब्ध आहत प्रौढ़ा के चेहरे को देख कर धीरे-धीरे बोली, 'कितना रुपया लगता है ?'

चौंक कर गोपाल की मां ने मुंह उठाया। बोली, 'मां, तुम्हारी क्या तबियत ठीक नहीं है ?'

लीलावती ने बात उड़ा दी। बोली, 'नहीं, तबियत ठीक है। मन जरा खराब हुआ है।'

—'नहीं-नहीं, जरा तो नहीं। तुम्हारा तो चेहरा जरा-सा हो गया है। तुम लोगों का सुखी शरीर है, सीत क्या बरदाश्त हो पाता है ? एक बछड़ा सोलह रुपए से कम का नहीं। लेकिन उस बात को अब सोचने से क्या फायदा ? सभी का तो चला गया है, देगा कौन ?'

लीलावती उसकी शून्यता की ओर देखती रही। उसकी शून्यता दूर करने की क्षमता लीलावती में है। सोलह रुपए लीलावती के लिए बहुत बड़ी चीज नहीं है, परन्तु उसके लिए बहुत है। लीलावती उसे रुपये देगी।

दो दिन पहले होता, तो लीलावती इतनी दिल-दरिया न होती, परन्तु आज सोच रही है।

बोली, 'होने दो, बाद में खरीद लेना। मैं आज रुपया दूंगी।'

हालांकि गोपाल की मां को प्रस्ताव समझने में काफी समय लग गया। जब समझी, तो पांव पकड़ कर विगलित होती हुई बार-बार प्रणाम करने लगी, हजारों बार शुभ-कामनाएं करती रही, पति-पुत्र के साथ सोने की पुतली में रहे, यह प्रार्थना की।

उसके बाद बोली, 'मां, बर्तन नहीं दिखाई पड़ रहा है ? रात को खाना नहीं पकाया था ?'

लीलावती ने सिर हिलाया।

'तभी तो कह रही हूँ, माँ की तबियत ठीक नहीं लग रही है। सो भाभी जी खाना नही पका सकती हैं?'

लीलावती के पाँव के नीचे से जमीन खिसक गई।

अचानक लीलावती ने ऐसे हाव-भाव दिखाए, जैसे किसी ने कमरे से बुलाया हो। 'आती हूँ', कह कर ढीले-ढाले ढंग से वह अन्दर घुस गई।

उन्हे इस बात का ध्यान ही न रहा कि गोपाल की माँ भी उनके पीछे-पीछे कमरे में आएगी। आएगी, उसका कर्त्तव्य है कमरे की सफाई करना। इसके अलावा आज लीलावती ने उसके आगे जो प्रस्ताव पेश किया है, उससे भी वह पीछे लगी रहेगी।

लीलावती ने देखा, कमरे के दरवाजे पर मृनाल खड़ा है और उनके कमरे के भीतर भक्तिभूषण। उनकी समझ में नही आ रहा था कि दरवाजा बन्द कर दे या नही। यह नही समझ पा रहे थे कि नौकरानी को डाँट लगा कर भगा दें या नही।

लीलावती को देख कर भयंकर विह्वल भाव से उन्होंने देखा। और ठीक उसी महा-मुहूर्त में वही भयानक बात गोपाल की माँ कर बैठी। लीलावती के पीछे-पीछे वह दरवाजे तक आ गई थी।

सोलह

उस भयानक बात ने उन्हे एक बार जबरदस्त बिजली का झटका-सा दिया। उस भयानक बात ने मानों अथाह समुद्र में एक छोटी-सी नाव आगे बढ़ा दी। जैसे उनके हाथ में स्वर्ग लग गया हो। उनकी अक्ल गुम हो गई। तीनों ने एक-दूसरे की तरफ देखा और उसी नाव पर चढ़ बैठे।

इसीलिए एक ही प्रश्न पर तीनों ने अपने-अपने ढंग से सिर हिलाया।

गोपाल की माँ ने कमरे में झाँक कर देखते ही कहा था, 'अरे! भाभी जी बीमार हैं क्या?'

उन तीनों ने सिर हिला कर बताया, 'हाँ।'

क्योंकि उन्हे दिखाई दे रहा था कि बाहर से, लेटे हुए व्यक्ति का चादर से ढँका पाँव दिखाई पड़ रहा है और कुछ नही।

गोपाल की माँ ने अपनी सूझ-बूझ का प्रदर्शन किया। बोली, 'सो रही हैं क्या? ज्यादा बुखार है?...तब रहने दूँ। अभी कमरे में घुसने की जरूरत नहीं है बाद में सफाई हो जायेगी।'

बरामदे से उतर गई। कहती हुई गई, 'यही तो कहूँ कि माँ का मुँह उतरा-उतरा

क्यों लग रहा है। माँ, चिन्ता मत करो। उस रात के पानी-बरसात के कारण घर-घर लोगों के सर्दी बुखार हुआ है।...माँ, चूल्हा जला दूँ?'

लीलावती ने अब उसे उधर बढ़ने नहीं दिया। उसे शक करने का मौका भी न देंगी। बाहर निकल आईं। बोली—'जला दो।'

'डरो मत माँ, ठीक हो जाएगी।' उसके बाद इधर-उधर थोड़ा-बहुत काम करके, अचानक लीलावती के पास आ गई। आस-पास कोई था नहीं, फिर भी इधर-उधर देखा। अकारण ही आवाज धीमी की। दबी जुबान बोली, 'और एक घटना, माँ सुनी है तुमने?'

लीलावती पथराई आँखों से देखती रही।

उसने आँखों की तरफ नहीं देखा। फुसफुसा कर बोल उठी, 'सरकारी स्कूल की बहन जी भी उसी रात से गायब हैं।'

लीलावती के गले से एक घड़घड़ाहट-सी निकली।

लीलावती के संवाददाता ने गले की आवाज और नीची की, 'सभी कह रहे हैं, अब कोई शक करने को नहीं है, बिल्कुल लूट कर ले गये हैं। लोगों ने शाम होने से पहले तक देखा था। जाएगी कहाँ? अभी तो कुछ दिन हुए आई थी। अभी तो किसी से जान-पहचान तक नहीं हुई थी। कौन जाने कहाँ घर-द्वार है। मैं भी कहूँ, कच्ची उम्र है, अकेले परदेश में आने की जरूरत क्या थी? मैदान के बीचों-बीच टिन के छतों वाला स्कूल। कौन तुझे बचाएगा भला?'

'पुलिस कुछ नहीं करेगी?'

क्लान्त स्वरों से निकले प्रश्न से बातों को मानो बाँधना चाहा।

बाँध सकी।

गोपाल की माँ जीभ से एक उपेक्षापूर्ण आवाज निकाल कर बोली, 'पुलिस! हूँ।'

और कुछ न बोली। जोर-जोर से झाड़ू लगाने लगी। जैसे 'पुलिस' शब्द पर ही झाड़ू फेरने लगी।

सत्रह

धीरे-धीरे होश आ रहा था।

मृत्यु के हिमशीतल पंजों के बीच से जीवन की झलक दिखाई दे रही थी।

हृदय की धड़कन तेज हो रही थी जिसमें नियमितता का आभास मिल रहा था।

माथे पर एक मक्खी बैठी, भौंहें सिकुड़ीं। इसके मतलब अनुभूति लौट रही है।

...हो सकता है बन्द आँखों की पलकें भी खुल जाँए।

चारों तरफ विह्वल दृष्टि घुमा कर फिर आँखें बन्द कर ले। उसके बाद धीरे-धीरे सोचने लगे, ये लोग कौन हैं? मैं यहाँ क्यों आई हूँ?

उसके बाद ही उठ बैठेगी। उसके बाद ट्रेन पर चढ़ कर जा सकेगी। लेकिन इस सिरचढ़ी मुसीबत को ये लोग क्यों ढो कर ले जाना चाहते हैं? वह लोग तो उस सरकारी स्कूल में पता कर सकते थे? वे तो अस्पताल का पता कर सकते थे?

परन्तु वे लोग ऐसा नहीं कर रहे हैं। क्योंकि उन्होंने लकड़ी की नाव पर पाँव रखा है।

ये फिलहाल चिन्ता को बड़ा कर के देख रहे हैं। वे देख रहे हैं कि मनुष्य और प्रकृति ने मिल कर आदमी की जो दुर्दशा की है। उसी में वे व्यस्त हैं। घोष लोगों के पुराने मकान में जो लोग कुछ दिनों के लिए ठाठ दिखाने आए थे, उनकी खोज-खबर लेने की गरज किसी को है नहीं।

इसी अवसर पर खिसक देना चाहिए।

किसी के झाँकने से पहले।

फिर भी यही अच्छा है। चार जने आए थे घोष लोग, चार ही जने चले गए। [illegible] अस्वस्थ है, उसे लिटा कर ले जा रहे हैं।

बहू के सास-ससुर, पति अगर उसके मुँह पर झुके रहे तो कौन उस मुँह की तमाशो लेने आएगा?

कलकत्ता पहुँच कर? तब की तब देखी जाएगी।

परन्तु उठ कर खड़ी हो सके तब न! बारह-तेरह घंटे हो चुके, अभी तक आँख भी नहीं खोली है।

आँखें नहीं खोल रही है, इसीलिए उस पर आँखें गड़ाए बैठे रहना संभव हो रहा है।

ऐसा करना संभव है तभी आँखों पर चश्मा न होने पर भी नाक पर चश्मे का निशान स्पष्ट है, हाथ में घड़ी न होने पर भी कलाई में घड़ी बाँधने का निशान मौजूद है। इससे लगता है कि चश्मा और घड़ी से हाथ धो बैठी है।

परन्तु केवल घड़ी और चश्मा ही? और कुछ नहीं गंवाया है उसने?

कौन बताएगा? जब उसे होश आएगा तब बतायेगी क्या? हो सकता है होश में आते ही, वह बुरा माने। मक्खी बैठने पर जैसे भौंहें सिकोड़ी थी वैसे ही भौंहे सिकोड़ कर कहे, 'किसने कहा था कि हमें यहाँ लाइए?'

कहेगी, 'अरे बड़े आश्चर्य की बात है? आप लोग इतने कौतूहली हैं?'

कहेगी, 'मैं आप लोगों के साथ जऊँगी? क्यों?'

और यह भी हो सकता है कि कृतज्ञता में झुक जाए। कहे, 'आप लोग मेरे जन्म के परम आत्मीय रहे होंगे।'

इस समय तो कुछ भी समझ में नहीं आ रहा है। समझ में नहीं

उसका नाम क्या है, कैसा स्वभाव है।

अभी तो पलक झपकाए बगैर बैठे रहो, इन्तजारी करो कि कब आँखें खोलेगी।

पर मृनाल क्यों ?

जिसके प्राण छटपटा रहे हैं। जिसे लग रहा है दौड़ कर सारी पृथ्वी छान मारे, ढूंढे कहां है उसकी जीवन-ज्योति, वह क्यों एक खम-भेडे दरवाले वाले, आधे अंधेरे कमरे में नाम परिचय हीन, सम्पूर्ण अपरिचित, एक बेहोश लड़की के पास स्तब्ध बैठा है ?

इस बात का उत्तर जानना हो तो उसी स्तब्धता की गहराई में ही झांकना होगा।

उसकी इच्छा हो रही है सारे विश्व भर में भाग-दौड़ करे, परन्तु रास्ते पर निकलने का साहस नहीं है। उसे लग रहा है कि उसके सारे शरीर पर भयंकर पराजय का इतिहास लिख गया है। उसके माथे पर कलंक की रेखा खिंच गई है।

ज्योंही वह रास्ते पर निकलेगा लोग पूछेंगे, 'क्या हुआ बताइए तो जरा ?'

अतएव वह चोरों की तरह छिपा रहेगा।

कलकत्ता लौटने पर उसी चोर का मुँह दिखाना पड़ेगा ? नहीं दिखाना पड़ेगा ? नही पड़ेगा। अगर ज्योति नही मिली तो कलकत्ते के उस गैर सरकारी दफ्तर का काम छोड़ कर परिचित समाज से बहुत दूर चला जाएगा। जहां कोई यह नही पूछेगा, 'क्या हुआ बताइए तो जरा ?'

लेकिन तब ज्योति को कौन ढूंढेगा ? उसे कैसे ढूंढा जाएगा ?

ढूंढने का पहला कदम तो यही होगा कि घोषणा करनी पड़ेगी कि 'मैंने ज्योति को खो दिया है।'

नहीं, उसे मृत्यु आकर नही ले गई है, गौरवमय रास्ते पर निरुद्देश यात्रा भी नहीं की है उसने। उसका रास्ता अंधकार का है और उसका पौरुषहीन पति निर्लज्ज, भीरु ही उस अंधकारमय मार्ग का दर्शक है।

ज्योति अगर जिन्दा है तो अपना पता नही बताएगी ? किसी भी तरह ? एक लाइन की चिट्ठी से ? किसी आदमी से कहला कर ?

लेकिन उसके बाद ? ज्योति अगर छिन्न-भिन्न होकर आये तब ?

मृनाल ने चिन्ता को दृढ़ किया।

ज्योति, तुम जिस किसी हालत में आओ, इस घर के दरवाजे तुम्हारे लिए हर समय खुले रहेंगे। मृनाल यह प्रमाणित कर देगा कि प्यार कभी मरता नही है।

अठारह

फिर भी प्रश्न तो बना ही रहा। मृनाल क्यों ?

मृनाल के हाहाकार की बात छोड़ भी दी जाए तो नियम कानून की बात ले लो। मृनाल क्यों एक अचेत अपरिचिता तरुणी को सभाले बैठा रहेगा ?

लीलावती भी तो है ? भक्तिभूषण नहीं हैं क्या ? अगर मानविकता करनी है तो ये लोग करें। उनमें क्या नियम कानून का ज्ञान नहीं है ?

है ! परन्तु उससे भी ज्यादा है डर ! शर्म का भय, मान-सम्मान की हानि का भय, सारा अहंकार धूल मे मिल जाने का भय। अचानक अगर कोई आ गया ? पड़ोसी भी खोज-खबर लेना अपना कर्तव्य समझे ? महिला या पुरुष ? वे तो लीलावती के पास आएँगी, भक्तिभूषण के पास आएँगे। तब ?

इससे तो अच्छा है वे बाहर की चौकीदारी करें और मृनाल अन्दर सभाले। कोई आएगा तो लीलावती कहेगी, 'हाँ, खूब बुखार है, लड़का कमरे में है। मैं जरा-सा कुछ खाना बनाए ले रही हूँ।'

—'लड़का कमरे में है, यह एक प्रकार की निषेधवाणी है। कोई नही जाएगा।

अगर कोई भक्तिभूषण के पास आये ?

भक्तिभूषण कहेंगे, 'हाँ, तेज बुखार है। शायद अचानक ठड हो जाने से।... नही-नही, डाक्टर नही चाहिए, मैंने दवा दो है। जरा बहुत होमियोपैथी की चर्चा करता हूँ।' उसके बाद ही देश की समस्या पर बात छेड़ बैठेंगे।

बैठे-बैठे झूठ का जाल बुना जा रहा है। ये नही जानते है कि उस जाल में कोई नहीं फँसेगा। इस घर के इन तीन प्राणियो को ही जाल ने घेर रखा है।

लेकिन जो जाल की रचना करते हैं वह इस बात को कब समझते हैं ? वे फदे पर फंदा बनाते चलते हैं और सोचते हैं कि विपत्ति से मुक्ति पाने का रास्ता आविष्कार कर रहे हैं।

उन्नीस

मक्खी चक्कर काट रही थी। बार-बार आकर माथे पर, गाल पर, चेहरे पर बैठ रही थी।

बार-बार भौंहे सिकुड़ रही थी।

मृनाल उधर ही देखता बैठा था। प्रत्याशाभरी दृष्टि बिछाये।

इसी धड़कन का रास्ता पकड़ कर किसी भी समय खुल सकती हैं भौंहों के नीचे की दो आँखें। इसीलिए मृनाल मक्खी नही भगाएगा।

मृनाल का सोचना कार्यान्वित हुआ।

उसका नाम क्या है, कैसा स्वभाव है।

अभी तो पलक झपकाए बगैर बैठे रहो, इन्तजारी करो कि कब आँखें खोलेगी।

पर मृनाल क्यों ?

जिसके प्राण छटपटा रहे हैं। जिसे लग रहा है दौड़ कर सारी पृथ्वी छान मारे, ढूंढ़े कहाँ है उसकी जीवन-ज्योति, वह क्यों एक अध-भेड़े दरवाजे वाले, आधे अंधेरे कमरे में नाम परिचय हीन, सम्पूर्ण अपरिचित, एक बेहोश लड़की के पास स्तब्ध बैठा है ?

इस बात का उत्तर जानना हो तो उसी स्तब्धता की गहराई में ही झांकना होगा।

उसकी इच्छा हो रही है सारे विश्व भर में भाग-दौड़ करे, परन्तु रास्ते पर निकलने का साहस नहीं है। उसे लग रहा है कि उसके सारे शरीर पर भयंकर पराजय का इतिहास लिख गया है। उसके माथे पर कलंक की रेखा खिंच गई है।

ज्योंही वह रास्ते पर निकलेगा लोग पूछेंगे, 'क्या हुआ बताइए तो जरा ?'

अतएव वह चोरों की तरह छिपा रहेगा।

कलकत्ता लौटने पर उसी चोर का मुँह दिखाना पड़ेगा ? नहीं दिखाना पड़ेगा ? नहीं पड़ेगा। अगर ज्योति नहीं मिली तो कलकत्ते के उस गैर सरकारी दफ्तर का काम छोड़ कर परिचित समाज से बहुत दूर चला जाएगा। जहाँ कोई यह नहीं पूछेगा, 'क्या हुआ बताइए तो जरा ?'

लेकिन तब ज्योति को कौन ढूंढ़ेगा ? उसे कैसे ढूंढ़ा जाएगा ?

ढूंढ़ने का पहला कदम तो यही होगा कि घोषणा करनी पड़ेगी कि 'मैंने ज्योति को खो दिया है।'

नहीं, उसे मृत्यु आकर नहीं ले गई है, गौरवमय रास्ते पर निरुद्देश यात्रा भी नहीं की है उसने। उसका रास्ता अंधकार का है और उसका पौरुषहीन पति निर्लज्ज, भीरु ही उस अंधकारमय मार्ग का दर्शक है।

ज्योति अगर जिन्दा है तो अपना पता नहीं बताएगी ? किसी भी तरह ? एक लाइन की चिट्ठी से ? किसी आदमी से कहला कर ?

लेकिन उसके बाद ? ज्योति अगर छिन्न-भिन्न होकर आये तब ?

मृनाल ने चिन्ता को दृढ़ किया।

ज्योति, तुम जिस किसी हालत में आओ, इस घर के दरवाजे तुम्हारे लिए हर समय खुले रहेंगे। मृनाल यह प्रमाणित कर देगा कि प्यार कभी मरता नहीं है।

अठारह

फिर भी प्रश्न तो बना ही रहा। मृनाल क्यों ?

मृनाल के हाहाकार की बात छोड़ भी दी जाए तो नियम कानून की बात ले लो। मृनाल क्यों एक अचेत अपरिचिता तरुणी को सम्हाले बैठा रहेगा ?

लीलावती भी तो हैं ? भक्तिभूषण नहीं हैं क्या ? अगर मानविकता करनी है तो ये लोग करें। उनमें क्या नियम कानून का ज्ञान नहीं है ?

है ! परन्तु उससे भी ज्यादा है डर ! शर्म का भय, मान-सम्मान की हानि का भय, सारा अहंकार धूल में मिल जाने का भय। अचानक अगर कोई आ गया ? पड़ोसी भी खोज-खबर लेना अपना कर्त्तव्य समझे ? महिला या पुरुष ? वे तो लीलावती के पास आएँगी, भक्तिभूषण के पास आएँगे। तब ?

इससे तो अच्छा है वे बाहर की चौकीदारी करें और मृनाल अन्दर संभाले। कोई आएगा तो लीलावती कहेगी, 'हाँ, खूब बुखार है, लड़का कमरे में है। मैं ज़रा-सा कुछ खाना बनाए ले रही हूँ।'

—'लड़का कमरे में है, यह एक प्रकार की निषेधवाणी है। कोई नहीं जाएगा।

अगर कोई भक्तिभूषण के पास आये ?

भक्तिभूषण कहेंगे, 'हाँ, तेज बुखार है। शायद अचानक ठंड हो जाने से।... नहीं-नहीं, डाक्टर नहीं चाहिए, मैंने दवा दी है। जरा बहुत होमियोपैथी की चर्चा करता हूँ।' उसके बाद ही देश की समस्या पर बात छेड़ बैठेंगे।

बैठे-बैठे झूठ का जाल बुना जा रहा है। ये नहीं जानते है कि उस जाल में कोई नहीं फँसेगा। इस घर के इन तीन प्राणियों को ही जाल ने घेर रखा है।

लेकिन जो जाल की रचना करते हैं वह इस बात को कब समझते हैं ? वे फंदे पर फंदा बनाते चलते हैं और सोचते हैं कि विपत्ति से मुक्ति पाने का रास्ता आविष्कार कर रहे हैं।

उन्नीस

मक्खी चक्कर काट रही थी। बार-बार आकर माथे पर, गाल पर, चेहरे पर बैठ रही थी।

बार-बार भौंहे सिकुड़ रही थी।

मृनाल उधर ही देखता बैठा था। प्रत्याशाभरी दृष्टि बिछाये।

इसी धड़कन का रास्ता पकड़ कर किसी भी समय खुल सकती हैं भौंहों के नीचे की दो आँखें। इसीलिए मृनाल मक्खी नहीं भगाएगा।

मृनाल का सोचना कार्यान्वित हुआ।

वही भौंहे एक बार और संकुचित हुई और उसी के साथ एक आवाज हुई, 'उह !'

मृनाल पास आया।

मृनाल ने चश्मे के निशान से बना नाक पर का दाग देखा, गले में पड़ी पतली चेन देखी, लीलावती की बड़ी ढीली-ढाली शमीज और चौड़े किनारे की साड़ी से लिपटी देह देखी, निढाल पड़े हाथों को देखा, रूखे-उलझे बालों को देखा, फिर धीरे-धीरे पुकारा, 'सुनिए ! सुन रही है ?'

आँखें सिकुड़ी होने पर भी बन्द ही थी। इस बुलाने पर या यूं ही, वही बन्द आँखें एक बार खुली।

न जाने कैसी विह्वल खोई-खोई निगाहों से देखा, उसके बाद फिर बन्द कर लिया। एक गहरी सांस भी निकली।

मृनाल के हृदय में एक दर्द सा उठा।

मृनाल ने सोचा, भगवान की इच्छा से यही ज्योति बन सकती थी।

उसके बाद सोचा, शायद ज्योति ने भी ऐसे ही कहीं असहाय नज़रों से चारों ओर देखने के बाद आँखें बन्द कर ली होंगी। शायद गहरी एक सांस हृदय को मथती हुई निकली होगी।

चेतना नहीं है फिर भी क्लान्त, बेबस सी यह सांस निकली कहाँ से है ?

मृनाल ने फिर पुकारा, 'सुन रही हैं ?'

उसने इस बार आँख खोली।

देखती रही।

विस्मय से या प्रश्नसूचक दृष्टि से नहीं, बल्कि भावशून्य दृष्टि से।

मृनाल को समझ में नहीं आया, क्या पूछे, इसलिए बोला—'पानी पीजिएगा ?'

उसने जवाब नहीं दिया। मानो अचेतन अंधकार से चेतना के दरवाजे पर आ खड़ी हुई है। जैसे समझ में नहीं आ रहा है कि किधर देखे। सामने या पीछे।

व्यग्रभाव से फिर मृनाल ने कहा, 'सुनिये ! पानी पीजिएगा ?'

उसने सम्मति भरी दृष्टि से देखा।

मृनाल ने उठ कर सुराही से पानी लिया और आकर खड़ा हो गया। उसने कमरे के दरवाजे की तरफ देखा। वैसा ही भिड़ाया था।

यहाँ के दरवाजे खिड़की पर पर्दे नहीं हैं।

ज्योति कपड़ों के साथ एक पर्दा लाई थी उसे अपने कमरे में टाँगा था। अब अगर जरूरत हुई तो दरवाजा ही बन्द करना पड़ेगा। लेकिन बन्द दरवाजा कितनी झमेले की चीज़ है ?

उधर ही देखा मृनाल ने और सुना कि नौकरानी कह रही है, 'भाभी जी तुम्हारे कमरे में क्यों हैं माँ ?'

मृनाल डरा।

उसे लगा कि यह नौकरानी जान-बूझ कर अनजान बनी जिरह करती चली जा रही है। उसकी जिरह के आगे लीलावती तिनके की तरह बह जाएँगी। और तब सारा गाँव जान जाएगा।

हाथों में पानी का गिलास लिए-लिए मृनाल ने अपने कान खड़े किए—माँ क्या कहती हैं। परन्तु लीलावती से कोई डर नहीं मिला। वह बह जाने वाली नहीं। लीलावती इस समय मंजी हुई अभिनेत्री का रोल अदा कर रही हैं। इसी अभिनय के चक्कर में वह चंगी हो कर उठ बैठी हैं। इसीलिए लीलावती बड़े सहज स्वाभाविक ढंग से कह सकी, 'सारी रात सिर पर पानी की पट्टी रखनी पड़ी थी, हाथ-पाँव में सेक, भइया जी इतना कुछ कैसे करते? इसीलिए इस कमरे में ले आई हूँ।'

मृनाल थोड़ा निश्चिन्त हुआ।

उसे लगा, माँ को जितना बेवकूफ समझता हूँ उतनी नहीं हैं। माँ अच्छी तरह से मैनेज कर लेंगी। इसे अपने साथ ले ही जाना पड़ेगा। अपने लोगों की प्रेस्टीज रखने के लिए। लेकिन होश में आने के बाद क्या रहना चाहेगी?

नौकरानी कह रही थी, सरकारी स्कूल की बहन जी खो गई हैं।

यही है क्या वह बहन जी?

इसकी भी क्या ज्योति जैसी दशा हुई थी? यह बस उनके चंगुल से निकल कर भाग आई है।

मृनाल क्षुब्ध होकर हँसा, मैं पृथ्वी की घटना में वही एक ही घटना देखूँगा क्या...?

हो सकता है आँधी में उसके घर की छत उड़ गई थी, शायद भाग कर कहीं आश्रय लेने निकली थी और भयंकर वर्षा के कारण दिशाहीन सी भाग कर आई होगी। आकर उसी गोशाला में पहुँच कर बेहोश हो गई होगी।

लेकिन सरकारी स्कूल है कहाँ?

और कहाँ है इसका वह क्वार्टर?

मक्खी फिर उड़-उड़ कर बैठ रही थी।

उसी ने क्या इस चेतनाहीन को चेतना के दरवाजे तक खींच लाने की जिम्मेदारी ली है?

सो उसकी कोशिश सफल हुई।

उसने मक्खी भगाने में अभ्यस्त हाथों की भंगिमा की। बोली, 'आह!' उसके बाद ही बोली, 'पानी।' मृनाल के हाथ में पानी का गिलास था, परन्तु उसकी समझ में नहीं आ रहा था, इसके बाद क्या करेगा? वह क्या माँ को बुला लाए?

या स्वयं ही जिम्मेदारी ले?

ज़रा सचेतन हुआ। धीरे से उसके माथे पर हाथ रख कर पानी पिला दिया।

३

पानी पी कर उसने साफ नज़रों से देखा, फिर धीरे से पूछा, 'यह मकान किनका है ?'

'हम ही लोगों का।'

'आप लोग कौन हैं ?'

'हम-लोग ?' कुछ झिझक कर मृनाल ने कहा, 'मेरा नाम मृनाल घोष है।'

उसने फिर थक कर आँखें बन्द कर लीं।

मृनाल ने देखा, उसकी पलकें कांप रही हैं। नाक के बगल में भी कंपन हो रहा है। होठों के कोने भी रह-रह कर कांप उठते थे।

शायद कुछ सोचने की कोशिश कर रही है।

'कुछ खायेंगी ?'

मृनाल ने पूछा।

लड़की ने आँखें खोल कर स्पष्ट आवाज़ में पूछा, 'क्या खाऊँ ?'

'यही...गरम दूध या हार्लिक्स ?'

मृनाल जानता है कि पिताजी को हार्लिक्स है। लड़की ने कुछ सोचा, फिर सिर हिला कर बोली, 'नहीं।'

बेचैन हो कर मृनाल ने कहा, 'क्यों ? नहीं क्यों ? दो-तीन दिन से तो कुछ नहीं खाया है।'

कुछ नाराजगी से लड़की ने माथा सिकोड़ा।

बोली, 'किसने कहा है ?'

'देख ही तो रहा हूँ। उस तूफानी रात में...'

'आह ! चुप रहिए।'

लड़की एकाएक तीव्र स्वरों में चिल्ला उठी।

मृनाल को लगा आंधी-तूफान की रात उसके लिए डरावनी है।

मृनाल को अचानक लगा, यह लड़की सचमुच ही कोई लड़की है कि एक धोखा है ? केवल ज्योति की दशा समझाने के लिए यहां इस छलनामयी मूर्ति में आ पड़ी है।

ज्योति भी शायद इसी तरह तीन दिन से भूखी...सारे शरीर में सिहरन उठी... सिर पर खून चढ़ गया।

मृनाल इस समय न जाने कौन एक लड़की को गरम दूध पीने के लिए, हार्लिक्स पीने के लिए खुशामद कर रहा है।

मृनाल पत्थर है क्या ?

शायद पत्थर ही है।

या फिर ममता का सागर।

इसीलिए मृनाल ने फिर कहा, 'बहुत कमजोर हो गई हैं, ज़रा-सा कुछ नहीं खाएँगी तो...'

लड़की की आँखों के कोर से आँसू बहने लगे।

लड़की धीरे से बोली, 'मैं जिन्दा नहीं रहना चाहती।'

जिन्दा रहना चाहता हूँ। जीना चाहता हूँ।

यही तो पृथ्वी का सार है।

आए दुःख, आए लान्छना, आए क्षति, शोक, ताप, दारिद्र—फिर भी जीना है। देह से जीना चाहते हैं, मन से जीना चाहते हैं।

फिर भी जीने का रास्ता कठिन है। जीने का परमिट पाना आसान नहीं है।

फिर भी इस समवेत कण्ठों के कोलाहल के बीच से कभी-कभार यह भी सुनाई पड़ता है, 'मैं जिन्दा नहीं रहना चाहती हूँ।'

और उसको जिन्दा रहना भी पड़ता है।

मन से न सही, देह से।

हर क्षण मृत्यु कामना करते हुए आयु का ऋण चुकाना पड़ता है।

इसीलिए इस बरसात की रात को आ पड़ी लड़की की आपत्ति की कोई परवाह नहीं की गई। उसे जिन्दा रहने के लिए गरम दूध पीना पड़ा। पीनी पड़ी गरम हार्लिक्स।

लीलावती गरम दूध ले कर आईं।

बोलीं, 'इतना जरा-सा पी तो लो।'

उसने कहा, 'आप लोग मेरे लिए इतना क्यों कर रहे हैं?'

रसविहीन स्वरों में लीलावती बोली, 'इतना और क्या? आदमी के लिए आदमी इतना भी नहीं करेगा? लो, पी लो।'

लड़की उठ कर बैठने लगी।

लीलावती हाँ-हाँ कर उठीं, 'उठो मत, उठो मत, चक्कर आ जायेगा। बहुत कमजोर हो गई हो।'

लड़की फिर भी उठ बैठी। खूब धीरे, सावधानीपूर्वक। हाथ बढ़ा कर दूध का गिलास पकड़ा।

लीलावती ने पूछा, 'तुम्हारा नाम क्या है?'

'मालविका मित्रा।'

'तुम यहाँ के स्कूल की बहन जी हो?'

'माँ।' इसी कमरे के एक कोने में हत्था टूटी आराम-कुर्सी पर बैठा मृनाल एक किताब पढ़ रहा था। माँ को मना करने के इरादे से बोला, 'माँ।'

अर्थात् अभी उसे परेशान मत करो।

लीलावती को गुस्सा आ गया।

उन्हें लगा, मृनाल जैसे अधिकार के चौखट में खड़ा लीलावती को अनधिकार चर्चा के लिए मना कर रहा है।

क्यों?

एकाएक मृनाल क्यों इस बटोर कर लाई गई लड़की का सत्ताधिकारी हो गया ?

लीलावती गुस्से से बोली, 'क्यों ? पूछने से क्या हो जाएगा ? कहां से आई है, किसकी लड़की है, जानना नहीं होगा ?'

'वह तो बाद में भी मालूम किया जा सकता है।' दृढ़ स्वरों में मृनाल बोला।

लीलावती गुमसुम-सी हो गईं।

लीलावती कुछ नहीं बोलीं। खाली गिलास ले कर चली गईं। सीधे भक्तिभूषण के सामने जाकर खड़ी हुईं। रुद्ध आवाज़ में बोलीं, 'किस जाति की है, क्या पता, उसका जूठा छूना होगा। उस पर एक सवाल पूछूं, इतनी स्वाधीनता भी नहीं होगी मुझे ?'

भक्तिभूषण ने शायद मामला क्या है अन्दाज़ लगाया। बोले, 'कमज़ोरी ज़रा दूर हो जाए...'

'उतनी बुद्धि मुझमें भी है...' तेज़ आवाज़ में लीलावती बोलीं, 'नाम भी तो मालूम करना जरूरी है ? या नहीं ? जब बुला कर खाना खिलाना होगा।'

लीलावती के चले जाने पर मालविका ने धीरे से बुलाया, 'सुनिये...'

मृनाल उठ कर पास आया, 'कहिए।'

'वह आपकी मां थी ?'

'हां।'

'आप लोग यहीं रहते हैं ?'

बड़ी मुश्किल से मृनाल ने उत्तर दिया, 'नहीं, कलकत्ते में ! यहां घूमने आए थे।

'घूमने ?'

मालविका के होठों पर हंसी खेल गई—'यहां भी कोई घूमने आता है ?'

'अपने गांव का घर है।'

'ओ !'

मालविका ज़रा चुप रह कर बोली, 'आप, आपकी मां और पिताजी ?'

फिर सिर में गरम खून दौड़ गया।

कठिनाई से कहा, 'हां।'

'मुझे लेकर आप लोग परेशानी में फँस गये।'

मालविका का कण्ठ-स्वर क्षीण सुनाई दिया।

मृनाल ने सोचा, परेशानी या परेशानी हरने वाला ? हमने जो योजना बनाई। उसमें तो तुम ही हमारे सम्मान की रक्षाकारिणी हो। परन्तु क्या तुम तैयार होगी ?

यद्यपि हम तुम्हें कुछ बतायेंगे नहीं। सिर्फ कहेंगे, तुम्हारा इलाज होना जरूर है, हमारे साथ चलो...

परन्तु तुम उस जाने के लिए तैयार नहीं भी हो सकती हो। कमज़ोर भी तो कम नहीं हो...।

अभी हम चले गये होते तो अच्छा होता। पड़ोसियों के जानने से पहले।

आश्चर्य !

अभी दो दिन पहले जब भक्तिभूषण ने मृनाल से छुट्टी की बात कही थी तब मृनाल को आश्चर्य हुआ था, लेकिन आज मृनाल स्वयं इन सांसारिक बातों पर विचार कर रहा था।

शायद मनुष्य के लिए सम्मान बहुत बड़ी चीज है।

सब कुछ चला जाये लेकिन सम्मान न जाये।

मृनाल लोग चार जने आये थे, चार को ही लौट जाना है। वरना एक की कमी के लिए एक हजार बातों का उत्तर देना पड़ेगा। और अन्त में गाँव से सिर नीचा कर के निकल जाना पड़ेगा।

अतएव...

'हम चार आये थे, चार जने ही जायेंगे।' भक्तिभूषण ने यह बात कही थी, 'और वह भी जितनी जल्दी हो सके उतनी जल्दी। उसके इलाज की भी जरूरत है !'

पर वह इलाज कहाँ रख कर होगा ?

मृनाल के दो कमरों के फ्लैट में वह नियम रक्षा हो सकेगी ?

चार जनों की चार जगह ?

'आह: ! मैं पागल तो नहीं हुआ हूँ...' कहा था भक्तिभूषण ने, 'इसके अलावा कोई उपाय न होने के कारण ही कहना पड़ रहा है। जाते ही हॉस्पिटल में भर्ती करना पड़ेगा। न जाने किस हालत में...'

चुप हो गये वे।

एक भयावह आशंका ने सबके दिल पर पत्थर रख दिया। मुँह खोल कर कोई कुछ कहता नहीं।

कहे भी तो कैसे कहे ?

उसी कहने के सामने तो ज्योति खड़ी है अटल, अचल। दूसरे किसी की बात करने चलेंगे तो ज्योति निरावरण हो जायेगी।

मृनाल ने पूछा, 'मुसीबत क्यों कह रही हैं ?'

'मुसीबत नहीं है ?'

'मनुष्य मात्र साधारण-सा कर्त्तव्य करता ही है।'

'मनुष्य ?' मालविका ने दुःखभरी हँसी हँस कर कहा, 'मनुष्य शब्द का मैं अर्थ भूल गई हूँ।'

मृनाल जरा चौंका। मृनाल को लगा, निहायत ही ऐसी-वैसी साधारण लड़की

नहीं है। बात करना जानती है।

बात करना जानती है, एक प्रशंसापत्र ही तो है। कितने लोग बात करना जानते हैं ? ज्यादातर लोग तो सिर्फ बक-बक ही करते हैं।

बीस

'मुझे लगता है, बिल्कुल ही कुछ न बताना ठीक न होगा।'

इस कमरे में बैठे-बैठे भक्तिभूषण बोले, 'ज़रा बता-समझा कर ले जाने से...'

लीलावती बोली, 'कैसा समझाना-बुझाना ?'

'यही कि हम अपने साथ दूसरे ही परिचय से ले जायेंगे...'

भक्तिभूषण यही बात सोच रहे थे।

परन्तु आश्चर्य की बात तो यह थी कि मालविका नाम की लड़की भी एक ही बात सोच रही थी। यहाँ से चली जाएगी अपने परिचय से नहीं, दूसरे परिचय से...

ग्राम उत्थान शिल्प शिक्षा केन्द्र की बहन जी मालविका मित्र का नाम मिट जाये, निःचिन्ह हो जाये। एक नाम-गोत्रहीन, ढूंढ कर मिली लड़की नये परिचय से जन्म ले।

मैं जिस समय 'इन्सान' शब्द का अर्थ भूलती जा रही थी उस समय इनसे मिली। मन ही मन सोचा मालविका ने।

उसके बाद जब मृनाल उसकी खोज खबर लेने आया, तब धीरे से बोली, 'मैं अपना नाम पता सब यहीं छोड़ कर जाना चाहती हूँ।'

मृनाल ने आँख उठा कर देखा।

मृनाल की आँखों में जिज्ञासा जाग उठी।

मालविका बोली, 'मेरा परिचय ही मेरी घृणा है।'

भगवान् नहीं भी हैं और हैं भी। वरना जिस समय ये लोग सोच रहे थे इसे कैसे कहा जाये कि तुम्हें कुछ घण्टों के लिये अपना मालविका नाम भूल जाना होगा। तुम 'दोप' परिचय से हमारे साथ चलो...

उसी समय यह बोल उठी, 'मैं अपना परिचय मिटा कर नए परिचय से जन्म लेना चाहती हूँ।'

फिर ?

कौन कहता है भगवान् नहीं हैं ?

भक्तिभूषण बोले, 'अगर ऐसी बात है तो इस समय हमारे परिचय से चलो। वही तुम्हारा नया परिचय होगा। तुम 'घोषों' में से एक हुई।'

भक्तिभूषण ने आकर पत्नी से कहा, 'मुझे तो हाथों में चांद मिल गया। अब इसी तरह से अपना परिचय देते हुये ले जाना होगा। उसके बाद कलकत्ता पहुँच कर...'

इस षड्यन्त्र में लीलावती भी थी।

इस नई लड़की के प्रति लीलावती उतनी नाराज नहीं रहती थीं परन्तु फफक-फफक कर रो पड़ी।

बोली, 'हे भगवान्, मेरा प्राण पत्थर का हो गया है। अपनी सोने की प्रतिमा को यहां फेंक कर किसे क्या सजा कर, उसके नाम से लेकर लौट रही हूँ।'

भक्तिभूषण कुछ कहना चाहते थे परन्तु चुप रहे।

मृनाल आकर खड़ा हुआ था।

'मां! यह सब क्या पागलपन शुरू कर दिया है? उनको होश आ गया है, वह सब कुछ समझ-बूझ रही है—अगर यह सब सुन ले तो?'

लीलावती बोली, 'बेटा! मुझमें तो अब धैर्य नहीं रह गया है।'

रुखी आवाज में मृनाल बोला, 'लेकिन मुझमें है।'

अब लीलावती चुप हो गई। बात तो सच है। अगर मृनाल धैर्य धारण कर सकता है तो उन्हें अधीर होने का अधिकार कहां? वह क्या मृनाल से ज्यादा सगी थी ज्योति की?

भक्तिभूषण ने पूछा, 'वह राजी है न?'

'वह तो होना ही होगा।'

'काफी स्वस्थ है न?'

'खुद ही हर समय देख रहे हो।'

'देखा, कमरे में धीरे-धीरे चल फिर रही है। लगता नहीं है कि अस्पताल जाने की जरुरत होगी।'

'बीमार तो कुछ है नहीं, केवल अमानुषिक कष्ट से सेन्सलेस होने की कमजोरी है।' मृनाल बोला।

मन ही मन भक्तिभूषण ने सोचा, यह आमानुषिक कष्ट किस बात का है, यही तो पता नहीं चल सका। तुम भी बहुत ज्यादा, क्या कहते हैं कि, कर रहे हो। पूछने तक नहीं दे रहे हो। बड़े ताज्जुब की बात है। मुंह से बोले, 'घोड़े गाड़ी के लिए कह आया हूं। सुबह को ट्रेन पकड़वा देगा।'

'कितने बजे की गाड़ी है?'

'साढ़े पांच! बड़ी अच्छी ट्रेन है।'

'अच्छी तो है ही। पड़ोसियों को पता तक न चलेगा। कोई झांक कर देखेगा

नहीं। यह न कहेगा, अरे ! तुम चारों में से एक का चेहरा कैसे बदल गया ?'

इक्कीस

परन्तु वह क्या इस हद तक बदल जाने को तैयार है ? उसके आगे इस अद्भुत प्रस्ताव को रखा है, 'अपना परिचय अब मिटा देना चाहती हो तो हमारा दिया परिचय ग्रहण करो।'

वह क्या इस प्रस्ताव पर राजी हो गई है—'ठीक है, इससे अगर आप लोगों को कोई सुविधा होती है तो मैं ज्योतिर्मयी घोष बन जाती हूँ।'

न ! खुलम-खुल्ला इन बातों की आलोचना नहीं हो रही है, फिर भी मानो चुपचाप घोषणा हो रही है, 'मालविका मित्र अब इस ग्रामोत्थान केन्द्र की प्रधान शिक्षिका नहीं है। यह मिट जाएगी ग्राम और ग्रामोत्थान से।'

तब फिर भक्तिभूषण के परिवार में घुल-मिल जाने में आपत्ति क्या है ? उसमें तो और भी सुविधा है। कृतार्थ हो जाना चाहिए उसे।

और कौन उसे इतनी आसानी से यहाँ से हटा सकता था ? इस नितान्त दुःख की घड़ी में उसे संभालता कौन ? कौन निस्वार्थ स्नेह और सेवा द्वारा जिन्दगी वापस कर देता ? मालविका का 'इन्सान' पर से विश्वास हट गया था, इन लोगों ने वह विश्वास लौटा दिया है।

बाइस

इस कमरे में लीलावती की सास के समय का एक बड़ा-सा शीशा है। यद्यपि उसके सम्पूर्ण शरीर पर उम्र की छाप स्पष्ट है फिर भी उसके असंख्य, गोल-गोल काले धब्बों के बीच में भी शरीर का आभास मिल सकता है।

उसी आभास के सामने खड़ी हो कर मालविका होंठों में मुस्कुराई। इस वेशभूषा में ट्रेन पर चढ़ना पड़ेगा, सोच कर जरा विचलित भी हुई।

लीलावती के नाप की शमीज और लीलावती की चौड़े किनारे की साड़ी ।

हास्यास्पद है, इसमें कोई सन्देह नही, परन्तु अपने को दूसरों की हँसी का खुराक बनाना अच्छा नही लगता है ।

मालविका ने सोचा, अच्छा । मैंने तो एक सेट कपड़ा पहन रखा था ? वह कहाँ गया ? जरूर फीचा गया होगा । जब इतना काम हो रहा है ।

इतना हो रहा है । आश्चर्य ! कितना हो रहा है ? जब कि कुछ भी नहीं हो सकता था ।

बाहर पैर की आहट मिली ।

जल्दी से मालविका शीशे के सामने से हट आई । खाट पर धप् से बैठ गई । उस जल्दीबाजी के लिए हाँफने भी लगी । और भी कमजोर लगने लगी ।

इस आवाज को वह पहचानने लगी है ।

इसी एक आवाज के लिए जैसे सारी चेतना प्यासी रहती है । इस अतृप्त रहने के लिए मालविका लज्जित होती है । सोचती, यह मैं अन्याय कर रही हूँ । इस घर के मालिक-मालकिन मुझसे इतना स्नेह करते है, मेरी सुविधा-असुविधा के प्रति सजग रहते हैं और मैं उनसे ज्यादा उनके बेटे को प्रधानता दे रही हूँ ।

हल्की-हल्की चेतना के मध्य उसके निकट-साहचर्य का अनुभव करने पर भी, जब से पूरी तरह से होश में आई है, देख तो रही है कि वह अपने को धीरे-धीरे हटा रहा है, अपने को निर्लिप्त रखता है । प्रत्यक्ष रूप से स्नेह-ममता का स्पर्श बचाता है, फिर भी लगता है कि आश्रय मिलेगा तो वही ।

इसीलिए प्राण उसी के लिए उन्मुख रहते है ।

क्यों ? अपने सत्ताइस वर्ष के कुमारी जीवन में क्या उसने कोई तरुण पुरुष नहीं देखा था ?

इन पाँच ही दिनों में उपन्यास की नायिका की तरह प्रेम मे फँस गई ?

हट ! इसे कहते हैं कृतज्ञता वह कृतज्ञता को दूसरी नजर से देख रही है ।

चैन मिली । निश्चिन्त हुई । कृतज्ञ सा चेहरा किये बैठी रही ।

पैर की आहट बाहर से अन्दर आई । मृनाल कमरे में आया ।

मालविका ने देखा, उसके चेहरे की एक-एक परत मे खिन्नता थी, आँखो मे तीखे थकावट के चिन्ह थे । फिर भी वह बोल उठा, बडे उत्साह से, 'क्या हुआ ? होश [illegible] रही हैं ? अच्छी भली चंगी होने लगी थी ।'

धीरे से हँस दी मालविका । बोली, 'ठीक ही तो हूँ ।'

'ऐसा कहना, बहुत सच बोलना नहीं होगा । इसी बात को [illegible] साबित दीजिए ।'

मालविका और भी कृतज्ञ हुई । शीशे में देखती तो देखती और [illegible] उतार हुई है । लगभग विह्वल लग रही थी ।

बोली, 'पहले कभी पूर्वजन्म पर सोचा नहीं था । अब सोच

'अब सोच रही हैं ?'

'हाँ । सोचती हूँ कि पिछले जन्म में आप लोगों ने अवश्य ही मेरा कोई बड़ा भारी कर्ज नहीं चुकाया था ।'

'बढ़िया । आपकी कल्पना शक्ति बड़ी तेज है ।'

'बिस्तर पर पड़े-पड़े धार देने का मौका भी तो मिल रहा है । सच, मनुष्य कितना महान् हो सकता है यह मैं यहाँ इस तरह आई न होती तो न जान पाती ।'

'यह भी आपके मन के कवि की कल्पना है । कोई भी मनुष्य इतना करता ही ।'

मालविका ने अविश्वास भरी हँसी हँसी ।

फिर बोली, 'आपलोगों के पास रहते कई दिन हो गए, इतना प्यार, इतनी स्नेह-ममता पा रही हूँ । जबकि आपलोगों के बारे में कुछ भी नहीं जानती हूँ ।'

'हम भी तो आपके बारे में बिल्कुल अंधकार में हैं ।'

सहसा मालविका चौंकी, फिर हताश हो कर बोली, 'असल में पूरा का पूरा तो यही है केवल अंधकार ।'

मन ही मन मृनाल बोला, तब तो लगता है तुम मेरी ही समगोत्र हो । इसीलिए एकात्मा का अनुभव करने लगा मृनाल ।

मुँह से बोला, 'मन में उत्साह लाइए । यह भी एक तरह का इलाज है । जान जाएँगी । हमारे बारे में सब कुछ धीरे-धीरे जान जाएँगी ।'

मृनाल सोच रहा था, इसे सब कुछ बताया जा सकता है । यह छिः छिः नहीं करेगी । अवाक् नहीं रह जाएगी ।

मालविका धीरे से बोली, 'आज ही का दिन तो है । कलकत्ता पहुँच कर कौन कहाँ...'

कौन कहाँ ?

'कलकत्ता पहुँच कर कौन कहाँ ?' मृनाल ने आश्चर्य से दोहराया—'कलकत्ता पहुँच कर हमें पहचान न सकेगी ?'

'ईश ! यह कौन कह रहा है ?'

'वाह ! यही तो कह रही है ।'

'बिल्कुल नहीं ! कह रही हूँ कि कलकत्ते तक पहुँचा कर आप लोगों की छुट्टी हो जायेगी । यद्यपि आप लोगों ने इतना किया है कि उसकी क़ीमत आंकूँ ऐसी हिम्मत मुझमें नहीं है ।'

'ठीक है, उसे न हो अगले जन्म के लिए रख दीजिए । आप तो ऐसी बातों पर विश्वास भी करती हैं । हो सके तो ब्याज समेत चुका दीजिएगा ।'

सुनकर मालविका हँसने लगी ।

हँसने लगा मृनाल भी ।

हँसते समय, मृनाल की आँखों के नीचे पड़ा काला निशान काफ़ी हल्का लगने लगा ।

तेईस

इस घर में लीलावती को यथानियम चूल्हा सुलगाना पड रहा था। उतारना पड़ा था ज्योति के हाथों, ताख पर सजाया चाय का सामान।

आदमी हालात का गुलाम होता है—यह बात फिर एक बार प्रमाणित हुई।

प्रमाणित हो रहा था कि मनुष्य का सबसे बड़ा शत्रु उसका यह शरीर है।

और है मालिक भी।

पति के सामने खाने की थाली रखते हुये लीलावती ने यही बात कही। बोली, यह नही सोचा था कि फिर चूल्हा-चौका ले कर बैठ सकूंगी।'

'उपाय ही क्या है? भगवान् ने जिस चक्कर में डाला है।'

'गोपाल की माँ की नज़र बचाते-बचाते यह कुछ दिन बीते। रात और बीते, तो जान में जान आये। कमरे में घुसने नही देती हूँ, कहती हूं सो रही है। कहती हूँ, मैंने कमरा साफ कर लिया है, लेकिन कपड़े धोने बैठती है तो सवाल पूछती है।'

'क्यों?' भक्तिभूषण को आश्चर्य हुआ, 'इसके मतलब?'

'मतलब नही समझ रहे हो? कहती है, माँ तुम्हारे कपडे तो धो रही हूँ, भाभीजी के कपड़े कहाँ हैं?'

भक्तिभूषण ने सिर झुका लिया। लीलावती ने आंचल के छोर से आंखें पोंछ ली।

'भाभीजी शब्द उच्चारित होते ही दिल फटता है।'

'अपने कपड़े ही पहना रही हो?'

'और क्या करूँ?' इधर-उधर देख कर लीलावती बोली—

'उसके तो बहुत कपड़े हैं। शायद हमेशा के लिए ही छोड़ कर चली गई है पर मृनाल के सामने उन चीजों को मैं हाथ कैसे लगा सकती हूँ?'

उसी समय अचानक हँसने की आवाज सुनाई पड़ी। दोनों ही एक साथ चौंक पड़े। दोनों ने उधर की तरफ मुड़ कर देखा।

उसके बाद एक लम्बी साँस छोड़ कर बोली, 'उनके मुँह से हँसी सुन सकूँगी, यह मैंने नही सोचा था।'

आगे बोली, 'एकाएक आ गई इस मुसीबत के रास्ते ही शायद भगवान् सब संभाल देगा। उसी की चिन्ता में काफी समय कट जाता है।'

'कलकत्ता जाना पिछड़ गया', भक्तिभूषण बोले, फिर भी एक तरह से अच्छा ही हुआ।'

'अच्छा, देखा है लड़की का चेहरा कितना प्यारा है ? और स्वभाव कितना नम्र ! जब से होश में आई है हमारी तकलीफ की बात सोच-सोच कर शर्म से मर रही है।'

'हालाँकि यही स्वाभाविक है।' भक्तिभूषण बोले—'कुछ पता चला ?'

'कैसे पता चले ? तुम्हारे लड़के ने जबरदस्त रोक लगा रखी है न ? कुछ मत पूछो। याद नहीं है, बहूरानी के मायके की बात पर भी इसी तरह से करता था ?'

न जाने क्यों लीलावती ने बहूरानी से इस बात की तुलना की।

ज्योति के माता-पिता नहीं हैं। भाई-भौजाई डिब्रूगढ़ में रहते हैं, अतएव शादी हो जाने के बाद से कुछ आने-जाने का या खोज-खबर लेने का प्रश्न ही नहीं उठा। ज्योति भी मायके नहीं गई। उस बारे में बात छेड़ने तक का उपाय नहीं था। मृनाल बुरा मानता। अब मालविका के कारण लीलावती को इस बात का ध्यान आया।

थोड़ा चुप रहने के बाद बोली, 'जैसा देख रही हूँ लगता तो नहीं है कि कोई रिश्तेदार है। रहते तो परेशान होते। शादी-ब्याह भी शायद, नहीं हुआ है।'

'क्या पता ! आजकल की लड़कियों को देख कर यह कहना मुश्किल है कि सधवा है या विधवा, अथवा कुंवारी। शादीशुदा लड़कियाँ सिन्दूर लगाती हैं, सजने के लिए। मन हुआ लगाया, नहीं मन हुआ, नहीं लगाया। लेकिन यह अवश्य ही सधवा नहीं है। या तो कुंवारी है या विधवा।'

'खाने-पीने में परहेज करती है क्या ?'

'नहीं। वह सब कुछ नहीं है। आजकल यह सब कौन करता है ? अपनी भांजी की बात भूल गये क्या ? कहती है, खाने-पीने का मामला सम्पूर्णरूप से व्यक्तिगत और अवश्य ही प्रयोजनीय है। अपने बदन पर क्या उनका परिचय-पत्र चिपकाये फिरना है ? क्यों ? पुरुष लोग तो 'मैं विवाहित हूँ, मैं विधुर हूँ या मैं कुमार हूँ' का टिकट लगाये नहीं फिरते हैं।'

'जितनी सब बड़ी-बड़ी बातें।'

कितने दिनों बाद आज सहज भाव से दोनों बातें कर रहे थे। स्पष्ट है कि इनके मुँह से भी हँसने की आवाज सुनने को मिलेगी। हो सकता है अभी। यह कोई असम्भव बात भी नहीं। यहाँ तक कि लीलावती इतना तक पूछ रही हैं कि—'जरा दाल दूँ ?'

दे रही थी, मृनाल आ कर खड़ा हुआ। मानों कुछ कहना चाहता है पर झिझक रहा है।

लीलावती ने पूछा, 'कुछ कहेगा ?'

मृनाल ने एक बार और इधर-उधर किया फिर बोला, 'कह रहा था, तुम्हारी वह साड़ी-वाड़ी तो अद्भुत है।...ट्रेन पर जाना है...उस कमरे में तो बहुत कपड़े पड़े हैं।'

पड़े हैं ! शायद हमेशा ही पड़े रहे।

उसी तरफ लड़के का ध्यान गया है।

लीलावती ने पूछा, 'उसके कपड़े ?'

'बहुत तो हैं।'

चौबीस

उसके बाद लीलावती निकाल लाईं हल्के नीले रंग की साड़ी और गहरे नीले रंग का ब्लाउज। ले आईं पेटीकोट भी।

बोलीं, 'ट्रेन पर जाओगी, इन्हें पहनो। कल सुबह तड़के जाना है।'

मालविका ने आश्चर्य से देखा, 'यह किसकी साड़ी है ? आपकी लड़की ?'

लीलावती को कष्ट हुआ। बोलीं, 'ऐसा ही समझो।'

मालविका उन्हें दुःखी होते देख जरा घबड़ाई। सोचा, शायद मैंने दुःखती रग छू ली है। मृत कन्या की 'स्मृति' उसे दे रही हैं, देख कर शर्म से गड़ गई। धीरे से अपने कपड़ों की बात पूछी। जिन्हें उस दिन पहन रखा था।

लीलावती ने बताया, 'वह कीचड़ सने कपड़े धोबी के यहाँ गये बगैर पहनने लायक नहीं होंगे। इकट्ठा करके मैंने कपड़ों के साथ कलकत्ते लिये चल रही हूँ।'

मालविका ने और भी धीरे-धीरे से कहा, 'तब यह रहने दीजिए न, जिन्हें पहन रखा है। इन कपड़ों को रख दीजिए।'

लीलावती ने उसके सिर पर, शरीर पर हाथ फेरा। बोली, 'मेरे बेडब शरीर के बेडब कपड़े। उन्हें पहन कर क्या ट्रेन यात्रा की जा सकती है ? इन्हें रखो। तुम जैसा सोच रही हो, वह बात नहीं है। मेरी लड़की के कपड़े नहीं हैं। मेरे लड़की हुई ही नहीं, बस यही एकलौता लड़का है। यह सब बातें बाद में बताऊँगी।'

पच्चीस

कल तड़के जाना है।

आज रात, जब बाहरी किसी के आने का खतरा नहीं तब घर के इस कमरे

से उस कमरे में जाया जा सकता है। मालविका ने सोचा।

कई दिनों से तो एक ही कमरे में छिपी बैठी है। हाँ, इस छिपने की जरूरत तो मालविका ने भी महसूस की थी। ग्रामोत्थान की मालविका मित्र यहां कैसे, यह प्रश्न पूछा जा सकता था?

निरुत्तर प्रश्न के बीच धुंधली होते-होते मिट जाना चाहती है मालविका। धब्बा लगा कर यहाँ पड़ी नहीं रह सकेगी।

इन लोगों के इस दुमजिले मकान में बहुत कमरे हैं। ठीक से कुछ भी नहीं देखा है।

धीरे से बाहर निकल आई। भक्तिभूषण की नजर पड़ गई।

घबड़ा कर बोले, 'यह क्या? यह क्या? तुम कहाँ जा रही हो बेटी? पानी पीओगी?'

मालविका मुस्कुराई।

भक्तिभूषण को लगा, बिलकुल बहूरानी जैसी हँसी है। लम्बी साँस निकल गई।

मालविका बोली, 'पानी नहीं चाहिए। सोच रही थी, आपके इस घर में पाँच रोज लेटे-लेटे बिता दिए। आज जरा देखूँ'...

खुश होकर भक्तिभूषण बोले, 'देखो। देख सकोगी?'

'जितना हो सकेगा।'

'गिर-विर मत जाना। संभल कर दिवाल पकड़-पकड़ कर जाना। इतना बड़ा मकान है, पूजा घर, बाहर के कमरे, देखते-देखते तुम्हारे पाँव दु:ख जाएँगे।'

मालविका फिर मुस्कुराई।

भक्तिभूषण और विचलित हुए।

छब्बीस

सब जगह चक्कर लगाने के बाद इस कमरे में। मृनाल के कमरे में। अवचेतन मन क्या यही आना चाहता था?

इधर-उधर के कमरों में लालटेन, लेकिन मृनाल के कमरे में पेट्रोमैक्स जल रहा था। शुरु-शुरु में आँखें चकाचौंध हुई।

उसके बाद आँखें सँभलते ही फिर चौंकी। आश्चर्य से देखती रही। यह तो किसी अविवाहित, अकेले आदमी का कमरा नहीं है। यहाँ तो हर जगह युगल जीवन के चिन्ह उपस्थित हैं।

इसके मतलब ? वह 'दूसरा' कहाँ है ? उस बड़ी लड़की की अलगनी पर जिसकी रंगीन साड़ी टँगी है, उस तख्त पर जिसके बाल सँवारने का सामान रखा है, शृंगार की आधुनिक व शौकीन सब चीजें रखी हैं।

बिस्तर पलटा है, परन्तु उसमें बसी होगी फूलों की बासी महक और बालों की गंध।

यह कैसा रहस्य है ? जहाँ तक सुना है उससे तो पता चला है कि ये लोग बहुत लम्बे अरसे के बाद, कुछ दिनों के लिए घूमने आये थे। छुट्टियाँ खत्म हो गई हैं, चले जाएँगे।

तो फिर ? उनकी पत्नी क्या मायके या कहीं और चली गई हैं ? किसी जरूरत से ? तो फिर एक बार भी उनका कोई नाम क्यों नहीं लेता है ? झगड़ कर चली गई है क्या ?

तब—इस तरह से, जैसे अभी-अभी कमरे से निकल कर कहीं गई है, उस तरह से सब सजाया हुआ क्यों है ?'

तो क्या...? तो क्या ? हाथ-पाँव मानो ठंडे हो गए। कमजोरी-सी लगने लगी। बैठ गई। इसीलिए क्या इनके आँखों के नीचे स्याह काले दाग हैं, चेहरा दुःख में डूबा हुआ-सा ?

कुछ देर तक बैठी रही। काफी सोचा, परन्तु किसी तरह से विश्वास न कर सकी कि इस घर में हाल ही में किसी की मृत्यु हुई है। तब फिर क्या...? तो क्या ? खिड़की के नीचे एक पत्रिका पड़ी थी, उठा लिया। देखा, बीच में एक जगह पर बालों में लगाने का काँटा लगा है। लोहे का काँटा।

'वह पत्रिका पढ़ेंगी ?'

मालविका चौंक पड़ी। ये क्या देर से आए हैं ? देख रहे हैं, मालविका मूर्खों की तरह पत्रिका लिए खड़ी है।

मृनाल ने फिर कहा, 'पढ़िए न।'

बोला। पर अपने हाथों से कुछ भी नहीं छू सकता था। कल सुबह चले जाना है। लीलावती ने कहा, 'बेटा, अपना सामान तुम्हें ठीक कर लेना है।'

मृनाल बोला, 'करूँगा। रात को कर लूँगा।'

पर सोचता रहा, अगर इसी तरह छोड़ दिया जाये जिस तरह से है ? अगर ताला बन्द करके छोड़ दिया जाए ? किसी दिन आ कर जब ताला खोला जाएगा। अगर ज्योति आ कर खड़ी हो जाए तो विस्मय भरे पुलक से विह्वल हो उठेगी, 'अरे ! जहाँ जैसा छोड़ गई थी, ठीक वैसा ही है।'

रह नहीं सकता है ? रखा जाए तो रह ही सकता है। मृनाल की दादी का भंडारगृह नहीं सजा सजाया पड़ा है ? शीशी, बोतलें, डिब्बे ?

ज्योति को लीलावती ने घूम-घूम कर दिखाया था, 'यह देखो बहूरानी, तुम्हारी

ददिया सास के हाथ की निशानी। यह ताख पर शीशा, सिन्दूर, कंघी रखी है। इसी से अन्तिम दिन तक सिन्दूर लगाया था।'

वह तो कब की बात है। मृनाल के दादा जी चंडी पाठ करते थे। उनकी दादी की व्रत-कथा की किताबें भी तो ताख पर रखी है। तब फिर ज्योति के हाथों की यह पत्रिका क्यों नहीं रहेगी? अब ज्योति गद्‌गद् हो कर बोल उठेगी, 'अरे, यह रहा चिह्न लगा कर रखा कांटा भी। कहानी पढ़ते-पढ़ते उठ गई थी।' उसके बाद कहेगी, 'तुम भी खूब हो जी। इन चीजों को वैसा ही रख दिया है?'

इतना कुछ सोच रहा है फिर भी इस समय मृनाल ने शराफत को महत्व दिया। बोला, 'पढ़ना चाहें तो पढ़िए न?'

मालविका हँसी। धीरे से रख कर बोली, 'अंधी आंखों से क्या पढ़ूँगी? कुछ दिखाई देगा?'

'आई सी।' विचलित हुआ मृनाल, 'आपका तो चश्मा खो गया है। यह तो बड़ा गड़बड़ है। कलकत्ता पहुँचते ही पहला काम होगा, चश्मे का इन्तजाम करना।'

मालविका ने आंख उठा कर देखा। बोली, 'हमारे चश्मे की जिम्मेदारी भी आप ही लोगों की है?'

'अवश्य! आप ही ने तो कहा है।'

कहते ही मृनाल चौंक पड़ा। इस कमरे में ज्योति के स्मृति-चिह्नों के सामने खड़े हो कर ऐसी हल्की बातें वह कैसे कर रहा है? कैसे कह सका?

मृनाल ने अपने को सम्भाल लिया। सोचा, ठीक ही तो है। ज्योति मरी कहाँ है, ज्योति तो खो गई है। मैं उसे जैसे भी हो ढूंढ निकालूंगा।

अब, ज्योति यहाँ नहीं है, इसलिए मैं किसी के साथ शराफत न बरतूं?

परन्तु मालविका असहाय दृष्टि से देखती रही, 'मैंने खुद कहा है?'

'कहा नहीं? वाह! याद करके तो देखिए। कहा नहीं था कि पूर्वजन्म में आपसे कोई मोटी रकम उधार में लिया था? उसे वापस नहीं किया था?'

मालविका खिलखिला कर नहीं हँसी, सिर्फ मुस्कुराई। इसीलिए बगल वाले कमरे तक आवाज नहीं पहुँची। और शायद इसीलिए मृनाल भी नहीं हँसा। बस, चेहरे पर जरा हँसी की झलक-सी दिखाई देती रही।

मालविका बोली, 'आपकी स्मृति शक्ति तो बड़ी तगड़ी है।'

'आपकी भी कुछ कम नहीं है। जन्म-जन्मातर तक कण्ठस्थ किए बैठी हैं।'

इस बार हँसे बगैर रहा न गया दोनों से।

इस कमरे में सूटकेस ठीक करती हुई सौनावनी ने भक्तिभूषण को तरफ देखा। बोली, 'हमेशा कहती आई हूँ कि भगवान् जो करता है अच्छे के लिए ही करता है, अब इस बात का अनुभव कर रही हूँ।'

धीमी आवाज में भक्तिभूषण ने कहा, 'कम उम्र का मन तेज धार बहती नदी के समान होता है।'

भगवान् का हर काम ही मंगलमय होता है, इस बारे में उनकी राय समझ में आई नहीं।

बोले, 'अपनी जिम्मेदारी पर लिये जा रहे है। आज तक लड़की की हिस्ट्री मालूम नहीं हो सकी।'

असन्तुष्ट हो कर लीलावती बोलीं, 'गोपाल की माँ के मुंह से तो सुन चुके हो...।'

'वह कोई निश्चित बात नहीं है। किसी हालत में इस तरह से...'।

हाथ का काम रोक कर लीलावती स्थिर हो कर बैठी। उदास स्वरों में बोली, 'इस बात का फैसला हम किस मुंह से कर सकते हैं ?'

सत्ताईस

लेकिन क्रमशः सभी बातों का पता चला। दोनों ने एक-दूसरे को समझा।

मालविका को पता चला कि उस भयावह दिन, जिस समय मालविका, होशोहवाश खोकर, गाँव के उस छोर से इस छोर तक भागती आ रही थी, शिकारी के पंजे से बच निकले डरे शिकार की तरह, ठीक तभी इनके घर की प्राणप्यारी चिड़िया शिकारी के अव्यर्थ निशाने की शिकार हो गई। उसकी पकड़ में आ गई।

ये लोग वापस चले जा रहे थे, पराजय की चादर ओढ़ कर, मालविका ने आकर इन्हें रुकने को मजबूर किया। उसके बाद ये लोग, सिर धुनते सूने आसन पर मालविका को बैठा कर धन्य हो गये हैं।

मालविका ने उस सूनी गुफा के सामने जैसे एक पर्दा टाँग दिया है।

रह-रह कर हवा का झोंका आकर पर्दे को हिला जाता, वही सूनापन मुंह चिढ़ा कर काटने आता, फिर सब शान्त हो जाता, स्थिर हो जाता। सब कुछ ढंक जाता। मालविका को मालूम होता, 'ज्योति' नाम की, भाग्य के हाथों मार खाई लड़की के, उसी की तरह न माँ है न बाप। जिसकी शादी करके भाई-भाभी ने कर्त्तव्य पालन किया है और जो उसे भुला देने में ही भलाई समझते हैं।...अतएव ज्योति ने अपने इस छोटे से घर को अपनी ज्योतिर्मयी छटा से आलोकित कर डाला था। आज वही अंधकार में खो गई है।

इन लोगों को भी पता चला कि मालविका नामक, यह प्यारी सूरत वाली, तीक्ष्ण बुद्धि मातृपितृविहीना लड़की, कभी चाचा-चाची पर अभिमान करके मोहल्ला से कलकत्ता चली आई थी। बिना किसी सहारे के। उस समय उम्र केवल सत्रह साल थी।

उसके बाद केवल अपनी कोशिश से कलकत्ता जैसे शहर में रही, पढ़ी। बी० ए०,

बी० टी० पास किया। अब यहाँ-वहाँ बहुत सिर धुनने के बाद, 'कुछ नहीं तो बेगार ही सही,' के मनोभाव के साथ, देश विभाजन के बाद हुए इस सीमा पर स्थित गाँव में काम करने आई थी।

ज्यादा दिन नहीं हुये हैं, बस कोई डेढ़ महीने। इस बीच 'काम खाली है' का विज्ञापन भी देख रही है, पत्र पर पत्र भी लिख रही है।

इन लोगों को और भी पता चला कि उस दुर्दिन में झाड़ियों की आड़ ले कर दौड़ते रहने के कारण ही वह आत्मरक्षा कर सकी थी। उस दौड़ते रहने में उसकी साड़ी फट गई थी, चश्मा गिर गया था और अन्त में उस बड़े मकान की टूटी दीवाल के पास पहुँच कर बेहोश हो गई थी। दो दिन उसी हालत में पड़ी थी।

मालविका की घटना इन्हें नई नहीं लगी, क्योंकि ये पहले ही अनुमान लगा चुके थे। पर निश्चिन्त हुये। परन्तु यह सब मालूम कब हुआ?

तो क्या ये लोग कलकत्ते नहीं गये?

ये लोग क्या मालविका मित्र को ज्योतिर्मयी घोष बना कर यहीं रह गये? सोचा, कलकत्ते का समाज और अधिक परिचित है, इसीलिए भयंकर भी। उससे तो कहीं अच्छा है इस पुराने विशाल महल की भारी-भारी दिवालों की आड़ में मुँह ढांके...

हट्! ऐसा भी कहीं होता है?

भक्तिभूषण ने क्या तांगा नहीं मँगवा रखा था?

उस तांगे ने क्या सुबह-सुबह आकर घोषों के घर के चार प्राणियों को स्टेशन नहीं पहुँचा दिया था? जिनमें से एक 'तभी-तभी बुखार से उठा दुर्बल प्राणी' था? 'बहूरानी को बुखार है', कई रोज से यही तो कह रही हैं लीलावती। अकारण ही बुला-बुला कर बताया है।

गाँव के गाड़ीवान भी परम आत्मीयजनों की तरह बात करते हैं।

इसीलिए गाड़ीवान बंसी ने कहा था, 'और कुछ दिन रुक जाते बाबूजी? अबकि बहू माँ की इतनी तबियत खराब है...।'

भक्तिभूषण जल्दी से बोले, 'लड़के की छुट्टी खत्म हो गई...।'

उसके बाद ऊँची आवाज में पीछे मुड़ कर लीलावती को सम्बोधित करते हुए बोले थे, 'अच्छी तरह से ओढ़ कर बैठने के लिए कहो, सुबह की ठंडक है...।'

बंसी ने इससे पहले कभी इन्हें देखा नहीं था, शायद सरकारी स्कूल की तभी-तभी आई बहनजी को भी नहीं, फिर भी भक्तिभूषण ने सहेज दिया था।

भक्तिभूषण की आत्मरक्षा की ताड़ना के आगे सारे दुःख भूल गए।

या फिर सभी को ऐसा लग रहा था।

मृत्युभय के बाद ही तो लोक-भय होता है। आते समय मृणाल भी इसी 'संभल कर' पर ध्यान रख रहा था। वह हालांकि इस छद्मवेशिनी की कमजोरी के कारण ऐसा

कर रहा था।

'आप अपने को जरा अच्छी तरह से ढांक लीजिए, बरसाती हवा चल रही है।'

क्या अपने को ढंक लेने की गरज छद्मवेशिनी में नहीं थी? वह भी तो मुंह छिपा कर भागना चाहती है? वरना उसे फिर उसी 'सरकारी शिक्षण केन्द्र' में वापस नहीं जाना पड़ेगा? जबकि सरकारी मदद से ट्रेनिंग ली है। छह महीने के लिए बाण्ड भरा था।

लेकिन स्टेशन पहुँचते ही मृनाल मानो दूर आकाश का तारा बन गया। लगा, मृनाल इन्हें जानता तक नहीं है।

चार टिकट कटा, तीन बाप को पकड़ाए और एक अपनी जेब में रखा। बोला, 'मैं बगल वाली बोगी में हूं।'

बगल वाली बोगी में क्यों?

लीलावती डर गईं।

उन्हें लगा, मृनाल कोई भयंकर षड्यन्त्र कर रहा है। शायद माँ-बाप को कलकत्ते की ट्रेन में चढ़ा देने की इन्तजारी में धैर्य धारण किए था।

बगल वाली बोगी में हूँ, कह कर गायब हो जाएगा। व्याकुल होकर लीलावती बोली, 'क्यों? बगल वाले डिब्बे में क्यों?'

'मुझे उसी में सुविधा होगी—' मृनाल ने निर्लिप्त भाव से कहा।

'यहां तुझे कौन सी असुविधा होगी?' लीलावती और भी ज्यादा व्याकुल हुईं।

एकाएक भक्तिभूषण ने एक डांट लगाई, 'ओ हो! हर वक्त तुम उसके साथ इतनी जबरदस्ती क्यों करती हो? उसे जहां सुविधा होती है वहीं बैठने दो न?'

लगा, वे मृनाल के बगल वाले डिब्बे के सिद्धान्त पर खुश ही हुए हैं। यह बात लीलावती समझ गईं, इसलिए चुप हो गईं। केवल उनके प्राण हाहाकार करने लगे कि कब अगला स्टेशन आयेगा।

ट्रेन रुकते ही वह उतर कर देखेंगी।

आश्चर्य, बापों को क्या किसी तरह का डर नहीं लगता है?

भक्तिभूषण क्यों नहीं सोच रहे हैं कि इस अवसर पर मृनाल गायब हो जा सकता है...जा सकता है अपनी खोई हुई पत्नी को ढूंढने।

परन्तु अगले स्टेशन पर लीलावती को उतरना नहीं पड़ा। मृनाल स्वयं पूछने आया कि किसी तरह की असुविधा तो नहीं हो रही है? फिर दो स्टेशन बाद भी।

धीरे-धीरे डर कम हो गया। सुबह की गाड़ी पर लोग कम थे। लीलावती माल-विका के बगल में बैठी और भक्तिभूषण के कानों में बचा कर समझाने बैठी कि इस लड़के के लिए उन्हें डर क्यों लगता है।

प्रश्नोत्तर के माध्यम से ही मालविका का इतिहास भी प्रकाशित हुआ।

अट्ठाईस

'उसने क्या सब सच ही कहा है ?' भक्तिभूषण ने प्रश्न पूछा। कुछ दिनों बाद पूछा।

सुन कर लीलावती कुढ़ गईं। बोली, 'झूठ बोलती तो इतिहास ऐसा नहीं होता। शेर के पंजों से कब कोई बच कर निकल सका है ? ऐसा हो सकता तो...।'

रुक गई थी। आंसू पोंछे थे।

लीलावती की आंखों का आजकल यही हाल है। मन भी बहुत कमजोर हो गया है। हर समय असहाय सी अनुभव करती। ज्योति उस पर छाई हुई थी। अपने प्यार भरे स्पर्श से ज्योति ने गृहस्थी को हृदय से लगा रखा था। लीलावती क्रमशः अपने ऊपर भरोसा खोती चली जा रही थी।

इसलिये अपने सूने घर की कल्पना करके इस लड़की को दोनों बाहों में भर लेना चाहा था। किसी हालत में छोड़ना नहीं चाहती थी, वरना कलकत्ते पहुँच कर स्टेशन पर उतरते ही उसने कहा था, 'मां, अब मुझे विदा कर दीजिए।'

मां ? उसे मां पुकारना किसने सिखाया ?

लीलावती ने लेकिन उसे धिक्कारा था। धिक्कारा था मां पुकार कर विदा चाहने के लिए। सवाल उठाया था कि मालविका के पास हृदय नामक वस्तु और उस हृदय में दया-माया नामक वस्तु मौजूद है या नहीं ? उसके बाद कहा था, 'अभी किसी हालत में नहीं छोड़ेंगी वह। ईश्वर ने बड़े दुःसमय में मिलाया है। इस मुसीबत की घड़ी में तुम मुझे छोड़ जाओगी ?'

'चलिए, चलिये ! अभी घर चलिये !' दबी आवाज में मृनाल ने कहा।

वह लीलावती के मन की बात समझ रहा था। जिस घर में चारों ओर ज्योति की स्मृति बिखरी है, उस घर को चाभी खोल कर अन्दर घुसने से डर रही हैं लीलावती। हिम्मत नहीं हो रही थी ज्योति द्वारा सजायी-सँवारी अपनी ही गृहस्थी में कुछ करने की। खूब समझ रही थी कि पुत्र या पति उनके इस डर में भरोसा दिलाने नहीं आएँगे। इस जगह उन्हें कोई सहारा नहीं देगा।

बल्कि लीलावती को ही इन्हें संभालना पड़ेगा।

यह बोझ कुछ कम भारी नहीं होता है। प्रियजन के विच्छेद-कातर शोकातुल हृदय की तुलना में कोई दूसरा बोझ है क्या ?

मालविका लीलावती का यह बोझ शायद थोड़ा हल्का कर सकेगी।

मालविका का आना इस बात का प्रमाण है। मालविका ने शायद ऐसा ही सम-

भौता किया है।

उसे कहीं लीलावती छोड़ सकती है ? उससे लिपट कर कहेगी 'नहीं, तू जाती कैसे है देखूंगी ?' कहेगी नहीं, 'मेरी कोई लड़की नहीं, तू मेरी लड़की है।'

उन्तीस

यह सब कलकत्ता आने के बाद।

जिस समय ट्रेन पर ज्योति के कपड़ों में इस लड़की को देख-देख कर मृनाल चौंक रहा था। जिस समय देख कर अवाक् हो रहा था कि ज्योति के कपड़े इसके शरीर पर कैसे फिट हो गये हैं और जिस समय बार-बार लग रहा था कि ज्योति के साथ न जाने इस लड़की की कहां क्या साम्यता है—उस समय नहीं।

उस समय भी दूरी बनाए रखते हुये लीलावती 'तुम' कह कर बात कर रही थी। और फुसफुसा कर लीलावती ने भक्तिभूषण से कहा था, 'चल फिर रही है और मैं चौंक उठती हूँ। उससे बहुत मिलती-जुलती है।' कहा था, 'मैं तो कहने की हिम्मत ही नहीं कर पा रही थी, मृनाल ही ने कहा। कैसी अच्छी लग रही है, देखो। कौन कहेगा कि यह उसके अपने कपड़े नहीं हैं।'

यह बात उन्होंने सोची भी नहीं कि कपड़ा चीज है ही अद्भुत, जब जिसने पहना तब उसका हो गया। अवाक् रह गई थी। चौंक-चौंक उठती थी, फिर भी चौंकना अच्छा लग रहा था। मानों, कभी भी यह सोच सकती हैं कि ज्योति है। लीलावती के आस-पास उसके आंचल का आभास मिल रहा है।

दूरी कम हो गई सियालदह स्टेशन पर उतर कर।

जिस समय मालविका ने कहा, 'तो फिर आप हमें अब छुट्टी दें। यहीं पास ही लड़कियों के एक हॉस्टल में मेरी एक सहपाठिनी रहती है...।'

उस समय लीलावती बोली, 'इसके मतलब, तू अब मेरे घर पर पानी तक नहीं पीयेगी ?'

हां ! हाथ-पाँव ठंडा कर देने वाला डर उसी समय लीलावती पर सवार हुआ था। इसीलिए कहा था, 'मेरे लड़की नहीं है। तू ही मेरी लड़की है।' उसी वक्त से 'तू' कहने लगी।

और मालविका ने सोचा था, 'ये कितनी महान् हैं।'

फिर भी कुण्ठित भाव से बोली थी, 'मुझे लेकर कम परेशानी तो हुई नहीं...

'इसके मतलब मुझे ‖ पराया समझती है ?'

'लेकिन...।'

'अब लेकिन-लेकिन मत कर, अभी भी तेरे हाथ-पाँव में ताकत नहीं आई। अभी भी मुँह इतना-सा हो रहा है और तू कह रही है, हॉस्टल में रहेगी। क्यों? कोई तो तेरा कहीं है नहीं, जो नाराज होगा। मुझे 'माँ' पुकारा है तूने, मेरे पास ही रह जा। यहीं कहीं नौकरी-चाकरी जुटा कर रह जा। परदेश में कहीं जाने की जरूरत नहीं है।'

मालविका हँसने लगी थी। बोली, 'तब फिर आप ही के पास नौकरी करूँ? और कौन देगा काम?'

'ठीक है। यही कर। मेरी लड़की का पोस्ट लिए बैठी रह। यही तेरी नौकरी है।'

इससे पहले कभी क्या लीलावती इतनी भावुक हुई थी? इससे पहले कभी क्या ऐसी आश्चर्यजनक बातें की थी उन्होंने?

शायद नहीं। ज्योति के दुर्भाग्य ने इनका स्वभाव बदल दिया है।

'रह जाइए।' मृनाल ने आवाज धीमी करते हुए कहा, 'नौकरी बुरी नहीं है। इसमें भविष्य में तरक्की के चान्सेज हैं।'

'भविष्य?'

'हाँ! माँ शायद इसके बाद अपनी बेटी की शादी करने पर जी-जान से जुट जायें।'

'आप क्या मेरी हँसी उड़ा रहे हैं?' मालविका ने कहा।

आहत हो कर मृनाल ने कहा, 'क्षमा कीजिएगा।' आँख उठा कर मालविका ने देखा, 'यह शब्द मैं ही प्रयोग में ला रही हूँ।'

नियति का खेल दिखाई नहीं दे रहा था, फिर भी उसका काम जारी था। मालविका भक्तिभूषण के परिवार की सदस्य बन कर उनके फ्लैट में आई थी। फिर भी उसने यह नहीं सोचा था कि रह जाना पड़ेगा। सोचा था, आज का दिन बीत जाने पर समझा-बुझा कर कल चली जाएगी।

लेकिन गई नहीं। जा नहीं सकी।

मृनाल ने कहा, 'चश्मा बनवाए बगैर जाना नहीं हो सकता है। मैंने प्रतिज्ञा कर रखी है कि आपको चक्षुदान करूँगा। उसे पूरा करने दीजिए।'

इसी तरह मजाकिया ढंग से हमेशा मृनाल बातें करता था। मालविका के लिए नई कोई बात नहीं कर रहा था।

परन्तु यह आदत अब तो बदल जानी चाहिए थी। ज्योति को खो कर भी वही पुराने ढंग से बातें करेगा? यह तो अनियमितता है, शर्म की बात है।

बीच-बीच में स्वयं भी चौंक पड़ता है। शर्म-सी लगती, फिर भी पुरानी आदत जाती नहीं। मृनाल की मृत्यु तो हो ही गई है, पर स्वभाव रह गया है। कहावत है न, मरने पर भी स्वभाव नहीं जाता है।

यद्यपि पहले की तरह चेहरे पर चमक नहीं आ जाती है, पहले की तरह आँखों

की पुतलियां थिरकने नहीं लगती है, फिर भी बातें वही पुराने ढंग से ही कर रहा था।

यहां, गांव के मकान वाला 'छाती पर बोझ' जैसा भाव नहीं था, न ही था बहुत कमरों, छत और बरामदे का शून्यताभरा हाहाकार...। यहां है केवल परिचित लोगों का डर।

वह डर भी हर समय नहीं।

वह डर सवार होता जब कोई बाहर के दरवाज़े की कुन्डी हिलाता।

वरना यह कहना कतई मुश्किल नहीं था, 'मैंने प्रतिज्ञा की है, आपको चक्षुदान करूंगा। उसे पूरा करने दीजिए।'

इस प्रस्ताव को ठुकराना आसान नहीं। क्योंकि चक्षु के अभाव में मालविका प्रायः अर्द्धमृत-सी हो गई है। एक लाइन पढ़ नहीं सकती है। एक बारीक काम नहीं कर सकती है। दीवाल पर टँगी तस्वीरों पर धुँधली नजर डालते-डालते तंग आ चुकी है।

सो मज़ाक में कही गई बात का जवाब नीरस ढंग से नहीं दिया जा सकता। इसीलिए मालविका को भी कहना पड़ा, 'कहावत है न कि भूखे को परोसी थाली नहीं दिखानी चाहिए ? चक्षुलाभ होते ही और एक दान लेने की इच्छा से हाथ बढ़ा सकती हूँ।'

मुस्कुरा कर मृनाल ने पूछा, 'वह कौन-सी वस्तु है ?'

मालविका ने सिर झुका कर कहा, 'विद्यादान।'

मृनाल ने उस झुके सिर की तरफ देखते हुए धीरे से कहा, 'वह मेरा डिपार्टमेंट नहीं है।'

'आपकी तरफ से भी तो पाना है।'

'केवल मेरे देने से तो काम नहीं होगा। श्रीमती लीलावती देवी की मेज़ से 'पास' करवा सकेंगी तब न ?'

'यह तो टालना हुआ। मैं फाइल आपकी मेज़ पर पहले लाई थी...।'

'लेकिन मैं कौन होता हूँ ? मैं तो एक क्लर्क भर हूँ। मुझे साइन करने का कोई राइट नहीं है।'

'कई मामलों में क्लर्क ही असली आदमी होता है।'

'वह तो सिर्फ घूस लेने के मामले में—' कह कर मृनाल हँसने लगा।

'जो घूस नहीं दे सकते हैं, वह चिरौरी-विनती ही कर सकते हैं।'

मृनाल ने ज़रा चुप रह कर कहा, 'आप क्या सचमुच यहां ऊब रही हैं ?'

मज़ाक की जगह गम्भीरता ने ले ली।

अतएव मालविका भी गम्भीर हुई।

'आप यह बेवजह कह रहे हैं, मुझसे ज्यादा अच्छी तरह से जानते हैं।'

'तब फिर इतनी परेशान क्यों हो रही हैं ?'

'क्यों हो रही हूँ, यह क्या आप नहीं समझ रहे हैं ?'

'उँ हूँ।'

'आप बहुत बात टालते हैं।'

'वाह ! इसमें टालने की क्या बात हो गई ?' मृनाल ने फिर हल्के ढंग से कहा, 'आपकी माँ नहीं है, मुफ्त में माँ मिल गई हैं। और श्रीमती लीलावती देवी के लड़की नहीं थी, बटोर-बुटूर कर एक लड़की पा गई हैं, इसमें परेशानी का सवाल कहाँ उठता है ?'

'इतनी बड़ी बेकार लड़की क्या खानी-खाली बैठी रहेगी और माँ का अन्न ध्वंस करेगी ?'

'ओह, ये बात है ? बेचैनी का यही कारण है क्या ?'

मृनाल बोल उठा—'आप हमेशा ही बेकार रहेंगी, यह बात तो है नहीं। जितने दिन हैं, न हो ध्वंस करेंगी हर रोज छटांक भर अन्न।'

अचानक चुप हो गया मृनाल।

लगा जैसे किसी पहाड़ी रास्ते से उतरते समय एकाएक खन्दक के सामने पहुँच कर अपने को संभाल लिया हो।

मालविका भी उस असमाप्त बात की गम्भीरता को समझ कर कुछ देर तक मौन रही। फिर धीरे से बोली, 'ठीक है, मुझे एक नौकरी ही ढूँढ़ दीजिएगा।'

'नौकरी ढूँढ़ना क्या इतनी आसान बात है ?' मृनाल कह कर हँस उठा, 'उसी डर से तो मान-सम्मान सब जाने पर भी नौकरी पकड़े बैठे रहना पड़ता है। लगा था, जीवन के इस छन्द के साथ पाँव मिला कर चल न सकूँगा, पर देखिए, ऑफिस जा रहा हूँ कि नहीं ?'

अन्दर ही अन्दर दोनों पक्ष एक-दूसरे को समझने लगे थे, इसीलिए इशारे से काम चल जाता है। इसीलिए उन बातों के बीच धूप-छाँव का खेल जारी रहता। कभी स्वभाव की धूप झिलमिला उठती, कभी हृदय का अंधकार बादल उस धूप को ढँक देता।

मालविका ने धीमी आवाज में कहा, 'काम तो कुछ करना ही पड़ेगा। काम नहीं रहेगा तो कैसे जिन्दा रहेंगे ?'

'यह तो दोनों ही अर्थों में।' दुःखभरी हँसी हँस कर मृनाल बोला, 'मनुष्य एक ऐसा प्राणी है, वह सारी कमी बरदास्त कर सकता है पर बरदास्त नहीं कर सकता है भूख। हर तरह की अस्वाभाविक हालातों में भी उसकी व्यवस्था कर ही लेता है।'

मुस्कुरा कर मालविका बोली, 'इसे मैं खूब समझती हूँ। सत्रह साल की रही होऊँगी, हाथ में पैसे तक न थे, चली आ रही थी श्रीहट्ट से कलकत्ते, फिर भी खाना ठीक जुटा लेती थी, जिन्दा भी रही। अब यहाँ देखिए न...हाथ में एक नया पैसा नहीं, फिर भी खा रही हूँ, पी रही हूँ, सुख-चैन में पल रही हूँ...'

'सुख-चैन कहाँ ?' मृनाल हँस उठा, 'असन्तोष का काँटा प्राणों में चुभाये बैठी हैं और सोच रही हैं कि कैसे यह काँटा उखाड़ कर फेंका जाये, यही न ?'

'वाह, इसके मतलब यह तो नहीं...।'

'नहीं, 'इसके मतलब' नाम की कोई चीज नहीं होती है। हम तो वैदिक आर्य की सेवा ग्रहण कर रहे हैं। हम तो लज्जित नहीं हो रहे हैं, कुण्ठित नहीं हो रहे हैं।'

'आहा ! बड़ी तो सेवा...' मालविका का चेहरा लाल हो उठा।

उधर देख कर गम्भीर भाव से मृनाल ने कहा, 'हमलोगों के लिए वह कितना है यह बात आपको समझा नहीं सकता ! मिस मित्र ! आपने मेरा बहुत बड़ा बोझ संभाल लिया है। माँ, पिता जी को लेकर मैं क्या करता ? खैर जाने दीजिये, बात-बात में असली बात दबी जा रही है, कल सुबह साढ़े आठ बजे तैयार रहिएगा, मैं आपको ले जाऊँगा।'

'ले जायेंगे ? कहां ?'

'वाह ! सब भूल गईं। आँख दिखलाने नही जाना है ?'

'देखिए, सचमुच, यह व्यर्थ का खर्च है। चश्मा बनवाये ज्यादा दिन हुए भी नही थे। प्रेशक्रिप्शन भी था...।'

एकाएक मृनाल डाँटने के लहजे में बोल उठा, 'था ? आश्चर्यजनक बेखबर महिला हैं आप तो ? उसे छोड़ आई ? जब दौड़ना शुरू किया था तब उसे भी साथ लेना नही चाहिए था ?'

सुन कर पहले तो मालविका आश्चर्य में पड़ गई फिर हँसने लगी।

और उस हँसी को देख कर मृनाल सोचने लगा कि क्या हर लड़की का हँसने का ढंग एक सा होता है ?

मृनाल बोला, 'कभी मुझे एक बात का बड़ा अफसोस था। सोचा करता था, हाय, इतने लोगो की आँख खराब जाती है, मेरी नही हो सकती है क्या ?'

'उसके बाद ? जब आँखे खराब हुई तब बहुत खुशी हुई न ?'

'ऐसा भी कहीं होता है ?' मुस्कुरा कर मृनाल बोला, 'दुष्प्राप्य चीज के लिये ही आदमी तड़पता है। पाने पर क्या करता है ? कुछ नही। तब तो याद भी नही रहता है।'

मालविका ने कहते वक्त कुछ और नही सोचा था। चश्मे की बात पर ही बोली, 'खो जाने पर फिर याद हो आती है। रग-रग उसे ढूंढता है, मिस करता है—है न ?'

कहते ही मालविका चुप हो गई।

मालविका को लगा, प्रसंग कुछ भी हो, बहाव दूसरे रास्ते हो गया है।

मृनाल ने भी इस बात को समझा।

मृनाल को लगा, मालविका इसके लिए शर्मिन्दा हो रही है, इसलिए उसने दूसरे रास्ते जाते बहाव को तरफ न देखने का बहाना किया। हँस कर बोला, 'यह भी कोई कहने की बात है ? खासतौर से घड़ी, पेन, पर्स, चश्मा। जब तक खोते नहीं हैं तब तक लगता ही नही है कि 'कभी था'।'

मालविका चपल होकर बोली, 'और भी एक चीज है जिसे खोने पर ही पता चलता है कि 'था'।' मालविका सामने बैठे दीर्घदेह को देख कर चंचल और मुखर हुई।

मृनाल उसकी चपल हँसी देख कर हँस उठा, 'रहने दीजिये, हर जगह हर चीज

का नाम नहीं लेना चाहिए। भूत घर दवाता है।'

'भूत ?'

'हाँ। जानती नहीं हैं ?' मृनाल गंभीर भाव से बोला।

'भूत घूमते रहते हैं, और जो कोई कुछ कहता है, मौका पाते ही उसमें घुस जाता है।'

'आप इन बातों पर विश्वास करते हैं ?' भौंहें सिकोड़ कर मालविका ने पूछा।

मृनाल बोला—'करूँगा नहीं ? आप क्या कहती हैं ? बल्कि देवता न भी मानूँ, भूत-प्रेत को तो मानना ही पड़ेगा। नहीं माना तो गर्दन मरोड़ देंगे न ?' कह कर हँसता रहा। मृनाल का स्वभाव ही ऐसा है।

मृनाल के जीवन में इतना बड़ा एक परिवर्तन आया, फिर भी उसका स्वभाव नहीं बदल रहा है। कहीं ऐसा तो नहीं कि एक ओर परिस्थिति उसे ऐसा करने नहीं दे रही है ?

देखा जाए तो, यह जो एक प्राणी, कुटुम्ब की तरह घर पर है, उसके साथ कुछ शराफत, कुछ सौजन्यता, कुछ हास्य-परिहास की भी तो जरूरत है ? वरना कैसा बुरा लगेगा।

उसे जबरदस्ती रखे भी है और अवहेलना करें ? छिः !

इधर लीलावती का स्वभाव कैसा बदलता जा रहा है। वह जान-बूझ कर नादानी करने लगी हैं। धीर-स्थिर स्वभाव की थी, भाव-प्रवण हो गई हैं। बड़ी सोच-समझ कर चलने वाली महिला थी, फिजूल खर्च हो गई है। लापरवाह हो रही है—अर्थ की दृष्टि से, अनर्थ की दृष्टि से भी।

लीलावती का बेटा उदास और दुःखी रहता है, इसलिए अपनी बनाई हुई बेटी को बहाने ढूँढ़-ढूँढ़ कर उसके आगे कर देती हैं। उनकी यह लड़की सब कुछ छोड़ कर भाग आई थी, इसलिए जब-तब आवश्यक वस्तुएँ खरीद-खरीद कर ले आती हैं।

अगर वह एतराज करती है तो कहती है, 'इसके मतलब तू मुझे पराया समझती है ?'

सब कुछ बिना सोचे-समझे कर बैठती हैं।

लेकिन भक्तिभूषण ? वे अपने विचारों के पक्के थे। वे भी इस 'बनाई हुई लड़की' को चाहते थे कि उनके विरहकातर बेटे के पास बार-बार जाये। वे उस लड़की पर पूरी तरह से अविश्वास न करने पर भी सोचते हैं, विश्वास क्या है ? शायद सारी बातें ठीक नहीं हैं, कुछ बातें बना कर कही हैं। क्या पता, चाचा-चाची से नाराज होकर चली आई है या और कोई बात है ?

सचमुच कुँवारी है, या बाल-विधवा ? या कुछ और ? यह सब सोचते हैं कभी-कभी। फिर भी धीरे-धीरे दिल से चाहने लगे हैं।

लड़की नम्र स्वभाव की थी। मधुर प्यारी हँसी, सुरुचि सम्पन्न, तीक्ष्ण बुद्धि।... प्रश्रय स्वीकार नहीं करती। मौके का कभी फायदा नहीं उठाती—यह गुण कुछ कम नहीं।

ज्योति से स्वभाव कम मिलता है। ज्योति प्रबला थी, यह मृदु है।

दोनों की अवस्था का अन्तर भक्तिभूषण को याद न रहता। यह भी नही सोचते कि मैं दोनों में तुलना कर ही क्यों रहा हूँ?

तीस

यही गलती दूसरे दोनों भी करते। क़दम-क़दम पर ज्योति से तुलना करते, परन्तु यह नहीं सोचते कि ज्योति के साथ तुलना क्यों कर रहे हैं?

तुलना करते, लीलावती की इस बनाई हुई लड़की के शरीर की बनावट ज्योति की तरह है। या फिर उसकी हँसी ज्योति की हँसी से मिलती है। या वह ज्योति के सारे काम कर रही है इसलिये हो सकता है वह उन जगहों में घूम-फिर रही है जहाँ ज्योति घूमा करती थी।

यह भी सच है कि धीरे-धीरे ज्योति के सब काम वही करने लगी है।

ज्योति हो-हल्ले के साथ काम करती थी, मालविका चुपचाप करती है...फिर भी काम सब करती है। न जाने कैसे समझ गई है, न जाने कैसे करने लगी है। मृनाल इसके साथ अच्छा व्यवहार कैसे न करे? बाहर की एक भद्र महिला उनकी गृहस्थी में काम करे तो कुण्ठित तक नहीं होगा क्या? और उस कुण्ठा को ढकने के लिए ज़रा सहज-भाव से हँसी-मज़ाक भी नहीं कर सकता है क्या?

इधर मालविका की तरफ से भी यही बात थी। जब ये लोग इतना कर रहे हैं तब क्या वह कृतज्ञ भी न हो?

और कृतज्ञ हो भी तो किसके आगे—मृनाल के सिवा? भक्तिभूषण तक पहुँचना संभव नहीं, और लीलावती बिल्कुल अपनी हो गई हैं...इन लोगों से कैसे कृतज्ञता प्रकट करे?

अतएव इन्हीं दोनों के बीच कृतज्ञता और शराफत प्रदर्शन का खेल चलता।

परन्तु क्या सचमुच ही मालविका इस घर में रह गई? सदा-सदा के लिए?

लगता तो कुछ ऐसा ही है।

अच्छा, किस परिचय से रह रही है?

परिचय कुछ नहीं। बस 'ईश्वर की दया है,' इसी परिचय से। लोग सोचते, ज़रा ज़्यादा अच्छे घर की सेविका है। वह चली गई है, आदमी तो चाहिए। इसीलिए कहीं से जुटाया है। परन्तु जुटाया कहाँ से है? वही—भगवान्! सच-झूठ से घुल-मिल कर, नाते-रिश्तेदारों में भी यह बात फैल गई है...कुछ दिनों के लिए गाँव के घर में

जाकर ये लोग अपनी अतिप्रिय बहू को गँवा आए है। मालूम हुआ है लेकिन अस्पष्ट—साफ-साफ नही। कैसे गँवाया—ये नही बता रहे है?

घुमा-फिरा कर कैसे भी पूछें, लीलावती कहती, 'भगवान् ने छीन लिया है।' दूसरा किसी तरह का सन्देह करने की इच्छा भी नही होती है। देखा तो है ज्योति को सब ने। पति के गर्व से गद्गद रहती थी।

तब? क्या हुआ था?

'पूछो मत भई, मुझसे सहन नही होता है। मैं बता नही सकती हूँ।'

'तब क्या तालाब की तरफ गई थी?' गृहस्वामी से पूछते।

भक्तिभूषण माथा ठोक लेते। अतएव तालाब की तरफ ही समझो।

मृनाल ने नौकरी ज्वाइन की। सहयोगियो ने सुना, छुट्टियों में मृनाल घोष की पत्नी मर गई हैं। सभी दंग रह गये।

इस तरह की घटना को केन्द्र मान कर किसी की बात करने की हिम्मत नही हुई। शान्त, उदास, गम्भीर मृनाल ने यथानियम आना-जाना शुरू किया। उन लोगो ने कहा, 'किस क़दर बदल गया है।' बाहरी लोगों ने भी यही कहा।

मालविका भी आने-जाने लगी। पास ही एक लड़कियों के स्कूल में नौकरी करने लगी। स्थायी नही, अस्थायी। फिर भी करने लगी।

मृनाल ने कहा था, 'यह काम क्यों ले रही हैं? बड़ा भारी तो स्कूल है, वह भी अस्थायी।'

मालविका हँस कर बोली, 'जीवन में कौन सी चीज स्थायी है?'

मृनाल ने सिर झुका लिया था।...

इकत्तीस

सिर तो झुकाना ही पड़ेगा। ध्रुव सत्य के आगे सिर झुकाने के अलावा कर ही क्या सकता था? कोई चीज स्थायी नही है, इससे बड़ा ध्रुव सत्य और क्या हो सकता है?' 'सत्य' चीज ही भयंकर होती है। यह तो खुली तलवार की तरह, दोपहर की धूप की तरह और जलती हुई आग की तरह होती है।

इसलिए आँखें खोल कर इसे सहन करना कठिन होता है।

स्थायी नहीं, कुछ भी स्थायी नहीं।

वस्तु नहीं, दृश्य नहीं, काल नहीं, जीवन नहीं, शोक नहीं, प्रेम नहीं। वरना मैं फिर हँस रहा हूँ ? बातें करता हूँ, खा रहा हूँ, धोबी के धुले, लोहा किए कपड़े पहन कर दफ्तर जा रहा हूँ ? मेरे दैनिक जीवन में कहीं किसी तरह का अन्तर आया है ?

केवल मैं अपने कर्मस्थल पर खूब शान्त और गम्भीर रहता हूँ, हँसता-बोलता नहीं हूँ। ऐसा कर नहीं सकता, इसलिए नहीं, बल्कि डरता हूँ इसलिए।

अगर मैं अपना वह मुखौटा थोड़ा सा भी हटाऊँगा तो वे सब मुझ पर चढ़ बैठेंगे और अतरंग भाव से पूछने लगेंगे।

'ज़रा बताइए तो हुआ क्या था ? अचानक ऐसा कैसे हुआ ? पहले से तबियत खराब थी ? ताज्जुब है। केवल कुछ दिनों के लिए घूमने गए थे, बहुत ज्यादा बुखार था क्या ? समय पर डाक्टर नहीं मिल सका था ? कितने दिन बीमार थी ? आपको क्या लगा ? मैलेरिया ?'

मौका पाते ही ऐसे ही सवालों के साथ कूद पड़ेंगे सब मृनाल पर। उनके एक-एक हाव-भाव से प्रश्न टपकेगा—मृनाल यह समझ रहा है। तब फिर शायद उसे तालाब वाली बात बनानी पड़े जोकि सबसे विश्वास योग्य है।

इसीलिए मृनाल अपने चेहरे का मुखौटा किसी दशा से गिरने या हटने नहीं दे रहा है।

जानता है, इतने से ही नहीं, उन प्रश्नों के उत्तर से वे सन्तुष्ट नहीं होंगे। वे पूछने बैठ जाएँगे, ठीक किस हालत में, कितने बजे क्या हुआ। तालाब से निकालने के बाद कैसे लक्षण देखे, क्या-क्या रोग के चिह्न मौजूद थे, डाक्टर ने क्या प्रेशक्रिप्शन लिखा, ठीक तरह से इन्तजाम हो सका था या नहीं—यह सब कुछ जानना चाहेंगे वे लोग।

मानों अपने एक सहयोगी की पत्नी के मरने का विस्तृत समाचार नहीं सुन लेंगे तो खाना हजम न कर सकेंगे।...उसके बाद बैठ जाएँगे सान्त्वना देने।

मृनाल सोचता, इसी डर से मैं स्वाभाविक नहीं हो रहा हूँ। वरना मन तो करता है बातें करने लगूँ।

घर पर भी कुछ डर बना ही रहता है।

'माँ के सामने सहज होते-होते अचानक अपने को मैं कठोर बना लेता हूँ,' मृनाल ने सोचा, 'यह सोच कर कि माँ यह न सोचें कि मैं ज्योति को भूल रहा हूँ। कहीं माँ यह सोचें कि मैं गम्भीरता गँवा बैठा हूँ।...और...और कहीं और कुछ न समझ बैठें।'

इसीलिए मैं जब अचानक किसी खाने की तारीफ करता हूँ, अगर मैं माँ की बनाई लड़की के प्रति प्यार की भंगि देख कर मज़ाक में हँस पड़ता हूँ तो तुरन्त अपनी रास खींच लेता हूँ, अपने को गम्भीर और उदास बना लेता हूँ।

इसके अर्थ हुए, मैं शोक का अभिनय कर यह प्रमाणित करने की कोशिश करता हूँ कि ज्योति को भूलता नहीं जा रहा हूँ।

मृनाल को कभी-कभी इस लड़की पर बहुत गुस्सा आता है।

यह लड़की मेरे जीवन की हानि है।

इसने किसी अनजाने आसमान से अपने अशुभ डैनों को फड़फड़ा कर ज्योति को हटा दिया है और खुद उसके सूने स्थान पर जम कर बैठ गई है।

उसका आना और ज्योति का खो जाना, एक ही घटना लगती है।

उसके बाद धीरे-धीरे वह सभी कुछ निगलती जा रही है।

मेरा शोक, मेरी सत्यता, मेरा प्रेम।

इसने मेरी गृहस्थी को भी निगाल डाला है। मेरी माँ को, मेरे पिता को।

ज्योति के लिए इन लोगों के मन में जरा भी खाली जगह नहीं रही।

ज्योति के कामों को अपने हाथों में लेकर अनजाने में इसने ज्योति के आसन पर अधिकार कर लिया है।

फिर भी, उसके विरुद्ध कुछ कह सकूँ, ऐसी कोई बात मेरे पास नहीं है। वह जगह मालविका चोरी, डकैती या बेइमानी से नहीं बना रही है। प्रकृति के नियमानुसार, खुद ब खुद, वह जगह उसके अधिकार में चली जा'रही है।

और इधर मैं उसी अनिवार्यता का दर्शक बना बैठा हूँ। उस अन्यायपूर्ण ढंग से किये गए कब्जे का विरोध नहीं कर रहा हूँ।

मैं परमानन्द मे देख रहा हूँ कि लीलावती देवी उठते-बैठते, 'मालवी, मालवी' कर रही हैं...

'मालवी, मेरी काले रंग की चद्दर कहाँ है रे? मालवी, धोबी के यहाँ से इस बार मेरी हरे चौड़े किनारे की साड़ी आई है क्या?...मालवी, मछली का क्या बनाऊँ? झाल या झोल?...मालवी, दूध क्या कुछ ज्यादा लिया जाएगा, बहुत दिनों से खीर नहीं बनी है।...मालवी, आज तुझे लौटने में देर होगी, यह कहा था न तूने? शाम को क्या सब्जी बनेगी, यह बताती जाना बेटी।'

मालवी भी तुरन्त कहती, 'शाम की सब्जी मैंने काट कर रख दी है माँ। खाने के कमरे में, ताख पर ढँकी रखी है। तुम जल्दीबाजी मत करना, मेरे लौटने पर खाना बनेगा। कहती—'आज खीर' क्यों माँ? गोश्त बन रहा है। कल बनेगी।' कहती, 'झाल तो पिता जी को हजम नहीं होता है, मछली का झोल ही बनेगा माँ।'

हाँ, 'माँ' और 'पिताजी'।

माँ, माँ, माँ!

'हरे किनारे की साड़ी तो पिछली बार आ गई थी माँ, आपकी अलमारी में रखी है। काली चद्दर धोने के लिए दिया है, कहा है दो एक दिन देर से लायेगा, एक आध जगह रफ़ू करना होगा।'

स्वयं भी कहा है, 'माँ, आज मेरा स्कूल खुला नहीं है, संस्थापक का जन्म दिन है। तुमने दुकान चलने को कहा था न? आज चलोगी तो चलो।...माँ, तुमने कहा है, छोटी मौसी बीमार हैं, देखने जाना है तो जाओ, मैं यहाँ सब संभाल लूँगी।'

बीच-बीच में वह लीलावती को यहाँ-वहाँ घूमने जाने का मौका देती है। कहती है, 'मैं सब संभाल लूँगी'।

अतएव सब 'संभल' रहा है।

भक्तिभूषण की दशा 'समर्पित प्राण' जैसी है। जैसे विमुग्धता कम हुई जा रही है। लड़की इतनी चौकस है कि उसके हाथों 'समर्पित प्राण' होने के अलावा और कोई चारा भी नहीं।

भक्तिभूषण कब-कब दवा खाते हैं, भक्तिभूषण नहीं जानते, जानती है मालविका। भक्तिभूषण किस वक्त क्या पहनेंगे इसका निर्देश देगी मालविका। भक्तिभूषण जिस दिन पानी बरसेगा उस दिन नहायेंगे या नहीं और गर्मी के दिनों में कितनी जोर से पंखा चलायेंगे, इस बात की देख-रेख की जिम्मेदारी मालविका की है।

इतना कुछ ज्योति से नहीं होता था।

ज्योति की चिन्ता-चेतना हिलोरें मारती थीं किसी और तरफ का ध्यान कर। ज्योति 'कर्तव्य' से ज्यादा 'आनन्द' को प्रधानता देती थी। इसीलिए ज्योति की कर्मनिष्ठा बीच-बीच में स्थिर बिन्दु से हट जाती थी, जिसे कि वृद्ध अवस्था की असहिष्णुता सहज ही क्षमा नहीं कर पाती थी।

इसीलिए ज्योति के साथ तुलना करने का काम चलता रहता।

और इस तुलना करने में मालविका अतुलनीय हुई जा रही थी।

कर्मनिष्ठा बड़ा ही भयंकर हथियार है। मन जीतने के लिए इससे बड़े हथियार कम ही होते हैं।

कर्मनिष्ठा अर्थात् चिन्ता, संयम और धैर्य!

वयस्क मन इन गुणों के आगे आत्मसमर्पण करे बगैर रह ही नहीं सकता।

इसीलिए भक्तिभूषण का असन्तुष्ट हृदय भी धीरे-धीरे वश में आ गया।

जिस समय भक्तिभूषण ने मालविका को पारिवारिक सम्मान रक्षार्थ अरण स्वरूप स्वीकार किया था उस समय असन्तुष्ट नहीं थे। उस समय तो उन्हें हाथों में चाँद मिल गया था।

परन्तु भक्तिभूषण की यह धारणा नहीं थी कि कलकत्ता पहुँच कर लीलावती इस बात को इतना बढ़ावा देंगी। जिस लड़की की जाति-धर्म का भी पता न हो, जिसने अपने परिचय-पत्र पर हस्ताक्षर करने के लिए स्वयं ही कलम हाथों में उठा ली हो, जो एक नाते-रिश्तेदार को पेश नहीं कर सकता हो, उसे हृदय का टुकड़ा बना लिया जाए, भक्तिभूषण इसके लिए प्रस्तुत नहीं थे।

उससे भी ज्यादा बुरा लगता था जब मृनाल के आगे इस लड़की को बढ़ा दिया जाता था। हो सकता है लीलावती अपने विरह-वेदनाग्रस्त बेटे के धधकते हृदय पर एक बूँद ठंडा पानी छिड़कने के इरादे से ऐसा असामाजिक काम कर रही थी, पर इससे भक्तिभूषण क्रुद्ध हो रहे थे।

पितृस्नेह अतुलनीय है, पितृस्नेह अति-मातृस्नेह की तरह अनिष्टकारी।

परन्तु अगर भक्तिभूषण उस कमरे में, मृनाल को गुपचुप हँसी गुन-से जल उठते।

भक्तिभूषण को लगता, लड़का इतना निकम्मा है ? इस पर किसी बात का असर तक नहीं । इतना प्यार, एक पल अलग नहीं हो सकते थे कभी और आज यह ? दो दिन में सब गायब हो गया ? छिः छिः । वह लड़की भी कम नहीं, कैसा जादू किया है माँ-बेटे पर ? दोनों को मुट्ठी में कर लिया है । किसी के मन में मेरी लक्ष्मी के लिए ज़रा सा भी दुःख नहीं ?

छिः छिः !

रह-रह कर छिः छिः करते ।

शुरू-शुरू में मालविका को रसोई में घुसते देखते तो तन-बदन में आग लग जाती । कहते, 'स्वयं कहा है 'मित्र' है, तो क्या यही पदवी होगी ? उसके खाना बनाये बगैर काम नहीं चलेगा क्या ?...तुम्हें क्या हो गया है ? तुमसे नहीं होता है ?

लीलावती ने इस अपमान को कभी सहन नहीं किया । दबे गुस्से से भभक उठतीं 'मेरे जांगर में तो आग लगी है ।' प्राण नाम वस्तु होती तो पता चलता कि मेरे मन में क्या गुजर रही है । अब मेरे हाथ-पाँव नहीं चलेंगे ।...इच्छा हो तो रख लो महराजिन और नहीं तो खुद पकाओ, खाओ । मैं तो उसी के हाथ का खाऊँगी ।'

'लोग देखेंगे तो कहेंगे कि मुफ्त में एक महाराजिन पा गई हो...।'

'लोग कहेंगे तो मेरे बदन में फफोले नहीं पड़ जायेंगे ।'

'वह भी तो सोच सकती है ।'

'तुम्हारे जैसा सब का मन कुटिल नहीं होता है ।'

परन्तु धीरे-धीरे वह कुटिल मन सरल होता गया ।

विरोधी मन भी विगलित हो उठा ।

यह भी देखा भक्तिभूषण ने कि लड़की को जैसा समझ रहे थे, वैसी है नहीं ।

एक तरुणी लड़की, अपने 'हृदय' की परवाह किये बगैर केवल तन-मन से सेवा करती चली जा रही है, ऐसी दुर्लभ घटना क्या अवहेलना करने लायक है ?

भक्तिभूषण अब उठते-बैठते 'माँ, माँ' कर रहे हैं ।

मालवी भी नहीं, सिर्फ 'माँ' ।

लीलावती अब इसी बात पर हल्के मजाक करती ।

'अरी ओ मालवी, देख तो तेरा बूढ़ा बेटा माँ माँ क्यों कर रहा है ?...ओ मालवी, तेरा इतना बड़ा बेटा क्या कह रहा है सुन तो ।...अरे ओ मालवी, सुन रही है, अपने नमकहराम बेटे की बात ? कहते हैं कि मेरा बनाया खाना उन्हें अब अच्छा नहीं लगता है ।'

बातों की लीला !

बातों की मधुरता !

ज्योति को लेकर इतना सब नहीं होता था ।

ज्योति के हाथ का बना खाना गले से उतरता नहीं था ।

ज्योति कितनी भी सेवा करे, जतन करे, उसमें भी 'मागूँ मागूँ' की झलक स्पष्ट थी।

दो घड़ी पास बैठे रहना ज्योति की जन्मपत्री में लिखा ही न था। काम खत्म होते ही कमरे में चली जाती, किताब पढ़ती, सिलाई बुनाई करती या लेटी बैठी रहती।

मालविका का अपना कोई 'कमरा' नहीं है।

इसीलिये मालविका हर समय आस-पास रहती। मालविका ने स्कूल की नौकरी शुरू भले न की है, पर यह नहीं लगता है कि चली गई है। जाते-जाते देख कर जाती कि हर चीज ठीक है, कोई कमी तो नहीं रह गई है। लौट कर आते ही फिर जुट जाती।

लीलावती अगर नाराज होकर कहती, 'मैंने क्या तुझे नौकरानी रखा है?'

तो मालविका हँस कर उत्तर देती, 'अरे हाँ, यह तो मैं भूल ही गई थी।'

लीलावती कहतीं, 'ठहर जा, एक अच्छा सा लड़का देख कर तुझे ससुराल भेजती हूँ।'

मालविका कहती, 'दया करो माँ, यह सजा मत देना।'

'क्यों न दूँ? ऐसा ही तो सोच रही हूँ।'

'तब मैं खिसक जाऊँगी। इसी डर से चाचा का घर छोड़ा था। चाचा के साले के साथ शादी के चक्कर में चाची...' हँस कर कहती, 'समझ ही रही हो वर कैसा रहा होगा?'

'तो क्या मैं तेरी अच्छी शादी नहीं करूँगी? मैं भी क्या ऐसा ही वर ढूढ़ूँगी?'

'मेरा भला रहने दो माँ! अपने पास नहीं रखना चाहती हो तो फुटपाथ पर धकेल दो।'

'तुम' कह कर ही सम्बोधन करती है।

नहीं तो लीलावती नाराज होती हैं।

लीलावती जैसे इस लड़की को उपलक्ष मान वात्सल्य रस को विकसित कर रही हैं। लड़की नहीं थी, अब उसी कमी को पूरा कर रही है।

मालविका भी इससे नाराज नहीं होती है या सिमटती-सिकुड़ती नहीं है।

तब फिर?

यह तो रहा दो वयस्क प्राणियों के हृदय का इतिहास। ये लोग न हो वृद्ध हैं, निर्भर रहते हैं, परन्तु इस घर के अल्पवयस्क सदस्य के दिल का हाल क्या है?

वह भी क्या इसी एक अस्त्र से घायल हुआ है?

यूँ तो वह कहता है, 'इस घर की मालकिन श्रीमती लीलावती देवी आपको कितनी तनख्वाह देती हैं?' कहता, 'अपने पर अत्याचार करने की भी एक सीमा होती है। यह सब क्या हो रहा है?...जूता सिलने से लेकर चण्डीपाठ—सारी जिम्मेदारी जैसे आपकी है। किस किताब में यह लिखा है बताइए तो?'

कभी-कभी वह गम्भीर होकर कहता, 'मेरी मेज किसी को साफ करने की जरूरत

भक्तिभूषण को लगता, लड़का इतना निकम्मा है ? इस पर किसी बात का असर तक नहीं। इतना प्यार, एक पल अलग नहीं हो सकते थे कभी और आज यह ? दो दिन में सब गायब हो गया ? छि: छि: । वह लड़की भी कम नहीं, कैसा जादू किया है माँ-बेटे पर ? दोनों को मुट्ठी में कर लिया है। किसी के मन में मेरी लक्ष्मी के लिए जरा सा भी दुःख नहीं ?

छि: छि: !

रह-रह कर छि: छि: करते ।

शुरू-शुरू में मालविका को रसोई में घुसते देखते तो तन-बदन मे आग लग जाती। कहते, 'स्वयं कहा है 'मित्र' है, तो क्या यही पदवी होगी ? उसके खाना बनाये बगैर काम नही चलेगा क्या ?...तुम्हे क्या हो गया है ? तुमसे नहीं होता है ?

लीलावती ने इस अपमान को कभी सहन नही किया। दबे गुस्से से भभक उठती 'मेरे जिगर में तो आग लगी है।' प्राण नाम वस्तु होती तो पता चलता कि मेरे मन में क्या गुजर रही है। अब मेरे हाथ-पाँव नही चलेंगे।...इच्छा हो तो रख लो महराजिन और नही तो खुद पकाओ, खाओ। मैं तो उसी के हाथ का खाऊँगी।'

'लोग देखेंगे तो कहेंगे कि मुफ्त में एक महराजिन पा गई हो...।'

'लोग कहेंगे तो मेरे बदन में फफोले नही पड़ जायेंगे।'

'वह भी तो सोच सकती है।'

'तुम्हारे जैसा सब का मन कुटिल नही होता है।'

परन्तु धीरे-धीरे वह कुटिल मन सरल होता गया।

विरोधी मन भी विगलित हो उठा।

यह भी देखा भक्तिभूषण ने कि लड़की को जैसा समझ रहे थे, वैसी है नही।

एक तरुणी लड़की, अपने 'हृदय' की परवाह किये बगैर केवल तन-मन से सेवा करती चली जा रही है, ऐसी दुर्लभ घटना क्या अवहेलना करने लायक है ?

भक्तिभूषण अब उठते-बैठते 'माँ, माँ' कर रहे हैं।

मालवी भी नही, सिर्फ 'माँ'।

लीलावती अब इसी बात पर हल्के मजाक करती।

'अरी ओ मालवी, देख तो तेरा बूढ़ा बेटा माँ माँ क्यों कर रहा है ?...ओ मालवी, तेरा इतना बड़ा बेटा क्या कह रहा है सुन तो।...अरे ओ मालवी, सुन रही है, अपने नमकहराम बेटे की बात ? कहते हैं कि मेरा बनाया खाना उन्हे अब अच्छा नहीं लगता है।'

बातों की लीला !

बातों की मधुरता !

ज्योति को लेकर इतना सब नही होता था।

ज्योति के हाथ का बना खाना गले से उतरता नही था।

ज्योति कितनी भी सेवा करे, जतन करे, उसमें भी 'भागूं भागूं' की झलक स्पष्ट थी।

दो घड़ी पास बैठे रहना ज्योति की जन्मपत्री में लिखा ही न था। काम खत्म होते ही कमरे में चली जाती, किताब पढ़ती, सिलाई बुनाई करती या लेटी बैठी रहती।

मालविका का अपना कोई 'कमरा' नहीं है।

इसीलिये मालविका हर समय आस-पास रहती। मालविका ने स्कूल की नौकरी शुरू भले न की है, पर यह नहीं लगता है कि चली गई है। जाते-जाते देख कर जाती कि हर चीज ठीक है, कोई कमी तो नहीं रह गई है। लौट कर आते ही फिर जुट जाती।

लीलावती अगर नाराज होकर कहती, 'मैंने क्या तुझे नौकरानी रखा है ?'

तो मालविका हँस कर उत्तर देती, 'अरे हाँ, यह तो मैं भूल ही गई थी।'

लीलावती कहती, 'ठहर जा, एक अच्छा सा लड़का देख कर तुझे ससुराल भेजती हूँ।'

मालविका कहती, 'दया करो माँ, यह सजा मत देना।'

'क्यों न दूँ ? ऐसा ही तो सोच रही हूँ।'

'तब मैं खिसक जाऊँगी। इसी डर से चाचा का घर छोड़ा था। चाचा के साले के साथ शादी के चक्कर में चाची...' हँस कर कहती, 'समझ ही रही हो वर कैसा रहा होगा ?'

'तो क्या मैं तेरी अच्छी शादी नहीं करूँगी ? मैं भी क्या ऐसा ही वर ढूंढूंगी ?'

'मेरा भला रहने दो माँ ! अपने पास नहीं रखना चाहती हो तो फुटपाथ पर धकेल दो।'

'तुम' कह कर ही सम्बोधन करती है।

नहीं तो लीलावती नाराज होती हैं।

लीलावती जैसे इस लड़की को उपलक्ष मान वात्सल्य रस को विकसित कर रही हैं। लड़की नहीं थी, अब उसी कमी को पूरा कर रही हैं।

मालविका भी इससे नाराज नहीं होती है या सिमटती-सिकुड़ती नहीं है।

तब फिर ?

यह तो रहा दो वयस्क प्राणियों के हृदय का इतिहास। वे लोग न हो वृद्ध हैं, निर्भर रहते हैं, परन्तु इस घर के अल्पवयस्क सदस्य के दिल का हाल क्या है ?

वह भी क्या इसी एक अस्त्र से घायल हुआ है ?

यूँ तो वह कहता है, 'इस घर की मालकिन श्रीमती लीलावती देवी आपको कितनी तनख्वाह देती हैं ?' कहता, 'अपने पर अत्याचार करने की भी एक सीमा होती है। यह सब क्या हो रहा है ?...जूता सिलने से लेकर चण्डीपाठ—सारी जिम्मेदारी जैसे आपकी है। किस किताब में यह लिखा है बताइए तो ?'

कभी-कभी वह गम्भीर होकर कहता, 'मेरी मेज किसी को साफ करने की जरूरत

नहीं है, मैं खुद कर लूंगा। मेरे कमरे के पर्दे, तकिए के गिलाफ किसने धोये ? नहीं, नहीं, मैं यह सब पसन्द नहीं करता हूँ।'

'आप नाराज हो रहे हैं ?' मालविका पूछती।

'हां नाराज होता हूँ। बेहद नाराज होता हूँ ?' मृनाल दृढ़तापूर्वक कहता, 'इस कमरे का कोई काम आपको करने की जरूरत नहीं है। ताज्जुब है। पहले इस घर में एक नौकरानी तो थी, बता सकती हैं वह कहाँ गई ? काम छोड़ कर चली गई है क्या ?'

उसके कहने के ढग पर मालविका हँस देती, 'काम क्यों छोड़ देगी ?'

'अगर काम नहीं छोड़ा है तो उसकी इतनी हिम्मत कब से हुई कि घर के लोग घर की सफाई करें, कपड़े-लत्ते फींचें ?'

घर के लोग ? मालविका ने आंख उठा कर देखा।

फिर आंखें नीची करती हुई बोली, 'उसका काम बहुत गन्दा है।'

'होने दीजिये। इसके लिये आपको अपने हाथ गन्दे करने की क्या जरूरत है ?'

'हाथों के काम से हाथ गन्दे नहीं होते हैं।' मालविका हँस कर बोली, 'कोई काम गन्दा नहीं है।'

मृनाल उसे हँसता देख नजरें फेर लेता।

शायद इस अस्त्र से 'निहत' हो रहा है इस घर का तरुण वयस्क सदस्य। तिल-तिल कर के। एक बुद्धि-सम्पन्न मन के साथ बातों का सुख, एक शान्त, सभ्य, धैर्यवान प्रकृति के साहचर्य का सुख, हरदम एक सुकुमार सुषमा का दर्शक बने रहने का सुख, निरर्थक जीवन के बोझ बने दिनों को कुछ हल्का कर सकने का सुख...यह क्या कम मूल्यवान है ? इसी क़ीमत पर बिका जा सकता है ?

इसके अलावा पतवार टूट गई। गृहस्थी की नाव को एक नियमबद्धता देना, गति प्रदान करना, बेचैन वृद्ध माता-पिता के चित्त को शान्ति देना भी उस पर विजय प्राप्त करने के लिए हथियार बना है।

हो सकता है यही बात मुख्य हो। पुरुष नियम से, शृङ्खलाबद्ध ढग से घर चलता रहे, यही चाहता है। जो इस परम वस्तु को दे सकता है, पुरुष मन उसका गुलाम हो जाता है।

परन्तु मालविका ?

इस घर की 'बनाई हुई लड़की ?'

वह तो इस गृहस्थी को बहुत कुछ दे रही है।

तब फिर वह क्यों बिकी जा रही है ?

क्यों इतनी दासता के बाद भी वह थकती नहीं है ? इस 'बनाई लड़की' के रिश्ते की नौकरी में सार्थकता क्या है ? सुख ही कौन सा है ? पर है सुख। है सार्थकता।

है—यह उसके चेहरे पर स्पष्ट झलकता है। आशाविहीन, भविष्यरहित इस

जीवन में ही परम सम्पूर्णता का आभास मिला है उसे।

आशाविहीन तो है ही।

भविष्यरहित भी।

जहाँ उसके मन ने लंगर डाला है, वहाँ की मिट्टी पोली है। खूँटा शायद ही गड़ पाये।

फिर भी, पहले दिन जब चेतनाहीन अंधकार से निकल कर चेतना के दरवाजे पर नजर पड़ी थी तभी जीवन बेच बैठी थी। उसके बाद धीरे-धीरे, काम के बहाने या यूँ ही, बातचीत करते वक्त या खामोश घड़ियों में, उत्सुकता या अवहेलना से भर उठा था वही मन।

मृनाल जब आग्रह-भरी दृष्टि से देखता है, उस समय सुख से, खुशी से, कृतज्ञता से मन परिपूर्ण हो उठता है। मृनाल जिस समय अन्यमनस्क हो कर, उसे भूल जाता है और अपने में खो जाता है तब श्रद्धा और विश्वास से सिर झुक जाता है।

यह आदमी बुरा नहीं है, हल्के चित्त का नहीं है, अवसरवादी नहीं है।

प्यार के लिये यह तो बहुत है।

इसके अलावा, लीलावती का प्यार?

उन्हें मालविका कुछ कम नहीं समझती है। यद्यपि उनका अधिकांश भ्रांति है, बहुत कुछ रोक रखने की व्याकुलता है, आत्मविश्वास की लीला है, फिर भी उनका हृदय असली है।

मालविका ने बहुत कुछ पाया है।

उसे मिला है आश्रय, मिला है स्नेह, और मिला है सम्मान।

और मिली है एक दुर्लभ वस्तु।

वह भी धीरे-धीरे मालविका के लिए ही जमा हो रही है, इसे वह भी समझती है।

वहाँ वह अपना लालच-भरा हाथ नहीं बढ़ाएगी, फिर भी यह ऐश्वर्य उसी के लिए संचित हो रहा है, जान जाना क्या कम सुख की बात है?

बहुतेरी विचित्र अनुभूति के बीच मालविका का मन तैयार हो रहा है। एक तरफ कुण्ठा, लज्जा, अनधिकार प्रवेश करने का अपराध-बोध और अच्छे-बुरे की द्विविधा-द्वन्द्व की गम्भीर चंचलता, दूसरी तरफ अनचखे एक स्वाद को चखने का तीव्र आकर्षण। जीवन में कब 'अच्छा लगने' का स्वाद चखा था मालविका ने? जीवन में कब मालविका किसी की नजरों में मूल्यवान हुई थी?

कभी नहीं। शैशवकाल में अनाथ मालविका मूल्यहीन थी।

इसीलिये उसने हर दिन सोचा था, अब माया-मोह के जाल को फाड़ कर चली जाऊँ, पर हर रोज बन्धन और भी दृढ़तर हो जाता।

कलकत्ते में आते ही जब मालविका तुरन्त नहीं जा सकी तब सोचा था, ठीक है, चश्मा बन जाये। उसके बगैर तो कोई काम नहीं हो सकता। दया का दान ही सही। मृनाल ने हँस कर कहा ही था, 'चक्षुदान।' मालविका मन ही मन बोली थी, 'दृष्टिदान। पृथ्वी को मैंने तुम्हारी महानता के कारण, तुम्हारी सुषमा के कारण नई दृष्टि से देखा।'

जिस दिन चश्मा तैयार हुआ, उसी दिन मृनाल ने आफिस ज्वाइन किया था।

मालविका दोपहर में उसका खाली कमरा झाड़ने-पोंछने घुसी। आज पहली बार उसे साफ और स्पष्ट दिखाई पड़ रहा था, शेल्फ में कौन-कौन सी किताबें हैं, दीवाल पर किस-किस की तस्वीरें टंगी हैं, मेज पर रखे स्टैण्ड पर जो तस्वीर हैं, उसका चेहरा देखने में कैसा है?

देखा, हर दीवाल पर केवल एक ही रमणी की रमणीयमूर्ति को नाना भंगिमा। शादी के बाद कुछ दिनों तक तस्वीर खींचने का यह पागलपन सवार हुआ था।

ज्योति कहती, 'इतनी तस्वीरें दीवाल पर टाँगने की क्या जरूरत है? एलबम में रहने दो न?'

'अरे, एलबम में तो है ही।' मृनाल कहता, 'कितनी हैं। परन्तु एनलार्ज्ड तस्वीरें एलबम के लिये नहीं हैं।'

'तुम्हारी सारी दीवाल पर बस मैं ही हूँ, तुम्हें शर्म नहीं लगती है?'

'मेरी सारी दुनिया में तुम ही हो, शर्म को उठा कर रखूं कहाँ?'

'माँ कमरे में आती हैं; बड़ी शर्म लगती है...'

'माँ पिताजी के सामने तुम निकलती नहीं हो? घूमती नहीं हो? हँसती हो न? काम भी करती हो। फिर? तस्वीर देखने में कौन सी बुराई है?'

'यह भी कोई तर्क हुआ? मैं तो केवल मैं हूँ और तस्वीरों में हूँ तुम्हारी मैं।'

'माँ में अगर वास्तविक बुद्धि होगी तो समझ जायेंगी कि दोनों ही एक हैं। सम्पूर्ण 'तुम' ही मेरी हो।'

'फिर भी, कोई बीवी की इतनी तस्वीरें दीवाल पर नहीं टाँगता। जानते हो, माँ तुम्हे 'बेहया' कहती हैं।'

'सभी माँ ऐसा ही कहती हैं। लड़के ने बहू को चाहा नहीं कि बेहया करार दे दिया गया।'

'उसी प्यार की तस्वीरें हटा कर रख दोगे तब क्या होगा?' कह कर नए सिरे से ज्योति प्रेम की मूरत बन जाती।

नया चश्मा लगा कर, उन्ही नाना भंगिमा को, बहु आलोचित तस्वीरों को देख सकी मालविका। अवर्णनीय एक यन्त्रणा-सी होने लगी। मेज पर रखे केवल एक ही चेहरे को अपलक देखती रही।

धीरे-धीरे जीवन्त हो उठा वह चेहरा। मालविका की तरफ देखा उसने, परन्तु

उसके हाव-भाव में कोई शिकायत नहीं थी, विद्रूप नहीं था, करुणा नहीं थी। केवल हास्योज्ज्वल मुख था। सुख सागर में बह रहा 'रानी-रानी' सा चेहरा।

बहुत देर तक देखते रहने के बाद उसी 'रानी-रानी' चेहरे के प्रति करुण भाव जागा मालविका के मन में। मन ही मन बोली, 'तुम कितनी दु:खी हो, कितनी दु:खी ?'

अपना दर्द भूल गई पर एक अपराध-बोध बना रहा।

वही शायद आज भी रह गया है। शायद बढ़ गया है।

जबकि, न जाने और कितने दिन बीत गए हैं, कितने सान्निध्य और साहचर्य के कारण व्यवहार सहज हो गया है। अब तो 'बनाई गई लड़की' भी इस घर के मालिक के बेटे को डाँट सकती है, अनुशासन कर सकती है।...

बिन कहे ही न जाने कैसे एक अधिकार की घोषणा हो गई है।

अब याद नहीं आता कि मालविका नाम की यह लड़की यहाँ कभी नहीं थी।

अब दिखाई नहीं पड़ता है कि इस घर की दीवालों पर 'ज्योति' नामक एक लड़की की निरी तस्वीरें टँगी हैं।

अब शायद कभी भी उसी तस्वीर-टँगे कमरे के मालिक को जब नींद नहीं आती, तब खिड़की के सामने खड़े हो कर व्याकुल भाव से नहीं पूछता है, 'ज्योति, तो क्या तुम सचमुच खो गई ? ज्योति, तुम जहाँ कहीं भी हो, एक खत तो लिख सकती थी?...ज्योति, तुम क्या मर गई हो ? ज्योति, आकाश के उन तारों में एकाकार हो गई हो क्या ?'

अब तो शायद वह बिस्तर पर लेटते ही सो जाता है।

हो सकता है, उसके सपनों में कोई और चेहरा उभर आता है, जो ज्योति का नहीं है। समय की धूल ज्योति के चेहरे को क्रमशः धुँधली करती रही है।

बत्तीस

दिन जाते, रात बीतती।

सूर्य अपने कक्ष में घूम रहा है। नित्य नियम से पृथ्वी अपनी धुरी पर घूम रही है। ऋतु परिवर्तन भी हो रहा है।

इस 'गति' की रचना करता चल रहा है धूल का चक्र। उसी धूल के नीचे दबता जा रहा था जीवन, चिन्ता, ध्यान-धारणा, दुनिया का सब कुछ। दबती जा रही है नीचे

की जमीन, पिछला रंग धुंधला पड़ता जा रहा है।

धीरे-धीरे 'ज्योति' फ्रेम में बँधी एक तस्वीर बन कर रह गई।

उस धुंधलके पर मालविका की मूर्ति प्रतिष्ठित हो गई है। अब केवल प्रतीक्षा है एक समारोह की, अभिषेक की।

उस अभिषेक की प्रस्तुति पर्दे के पीछे कम्पित हो रही है।

परन्तु मृनाल क्या इतना ही बेगैरत है? इतनी जल्दी ज्योति को भूल गया? एक बार अच्छी तरह से ढूंढा भी नहीं? खोकर निश्चिन्त हो गया?

ज्योति के लिए उसने कोई त्याग नहीं किया? ज्योति के ध्यान में गुमसुम नहीं रहा? एक साधारण आदमी की तरह खाता रहा, सोता रहा, काम किया। दुकान पर गया, किताब पढ़ता रहा, बातें की। इसे धिक्कारा नहीं जायेगा?

नहीं, मृनाल के साथ इतना अविचार नहीं करना चाहिए। बहुत कुछ तो किया था उसने। खोये हुए व्यक्ति को खोजने के लिये, संसार भर में जो उपाय और पद्धतियाँ हैं, उन सबको आजमा चुका था। अखबारों में विज्ञापन निकलवाया था, थाना पुलिस किया था, उड़ती कोई खबर सुनते ही वहाँ भागता था। कोशिश करने में कुछ उठा कर नहीं रखा था।

तीन-तीन साल कुछ कम नहीं होते हैं। कितना कुछ तो किया। इसके बाद और क्या करता? धीरे-धीरे नियति के इस अमोघ अनिवार्य को स्वीकार कर लिया था।

जिस तरह लोग मृत्यु को मान लेते हैं। मृत्यु के सूनेपन को।

जब न पूरी हो सके ऐसी क्षति होती है, तब करने को रहता क्या है? परम प्रिय व्यक्ति चला जाता है, कभी-कभी एक के बाद एक, सभी चले जाते हैं, उसके बाद भी इन्सान को जीवन-पथ पर चलना पड़ता है। जब तक आत्महत्या कर के जीवन का अन्त न कर ले, यथानियम चलते ही रहना पड़ता है। शरीर तो परम शत्रु है और परम प्रभु भी। देह रही तो सब कुछ रखना पड़ता है।

शुरु-शुरु में मृनाल नौकरी ही छोड़ देना चाहता था। छोड़ना चाहता था इस फ्लैट को, इस मोहल्ले को, इस शहर को।

रिश्तेदार, मित्र, परिचित समाज, सब कुछ छोड़ना चाहा था।

परन्तु भक्तिभूषण ने एक अत्यन्त आवश्यक बात याद दिला दी। स्थिरबुद्धि गृहस्वामी भक्तिभूषण बोले, 'इस घर को छोड़ दिया तो फिर कभी उसे पा सकने की आशा नहीं रहेगी।'

सुन कर मृनाल स्तब्ध रह गया। इस बात की सत्यता को उपलब्ध किया था उसने।

सचमुच, कोई उम्मीद नहीं रहेगी। जो भी खबर आएगी, इसी पते पर आएगी।

किसी की चिट्ठी अगर आई तो इसी पते पर आएगी। और...?

और अगर वह कभी आ जाये तो इसी घर के दरवाजे पर आयेगी। फिर? फिर क्या? घर नहीं छोड़ा गया। और अब घर ही नहीं छोड़ा तो काम के बिना कैसे चलेगा?

अतएव, मृत्युसंवाद ही चालू करना पड़ा। भीतर ही भीतर तलाशी चलती रही।

और कहने को तो मृत्यु।

जिसके अब मिलने की कोई आशा नहीं, वह मृत नहीं तो और क्या है? ढूंढना-ढाढ़ना तो आत्म-मर्यादा की बात है। निश्चेष्ट रहना तो अपने को अपने सामने छोटा करना है। अरने से, दुनिया से और घर आ पहुँचे उस अतिथि के सामने सम्मान बनाये रखने के लिए बहुत दिनों तक व्यर्थ चेष्टा की पुनरावृत्ति होती रही।

उस चेष्टा में मालविका ने भी भाग लिया था।

मालविका अखबारों के दफ्तरों में गई थी। मालविका मृनाल के साथ पुलिस के हेड क्वार्टर में भी गई थी।

लीलावती ने कहा, 'मेरा दुःखी लड़का अकेला-अकेला जाता है, और दिल तोड़ कर घर लौटता है। ऐसा कोई नहीं है जो उसके साथ जाये। मेरी इच्छा होती है—उसके साथ जाऊं।'

तब मालविका ने कहा था, 'मैं तो बेकार हो बैठी हूं। जा सकती हूं।'

इस बात पर किसी को आश्चर्य नहीं हुआ था। क्योंकि आज के जमाने में लड़के-लड़की के काम में कोई फर्क नहीं है। लीलावती का समय तो है नहीं कि इच्छा रहने पर भी घर रूपी पिंजड़े में बन्द रहेगी। इस युग की लड़कियाँ, लड़की हैं इसका पता केवल लगता है जब लूट होती है। रावण के समय से यह इतिहास दोहराया जा रहा है।

मालविका ने कहा था, 'जा सकती हूं।'

जाती थी। अक्सर जाती थी।

उसी एक साथ आने-जाने के सूत्र का सहारा लेकर एक बन्धन-सूत्र की रचना हो गई। चांद की बुढ़िया माँ चरखा चला कर जो डोरा सारी दुनिया में बैठे-बैठे फैला रही है, वही डोरा तो इस बन्धन के लिए काम में आता है।

बन्धन में फँसा है, यह बात अब किसी से छिपी नहीं। छिपी न होने के कारण ही शायद हिम्मत भी बढ़ती जा रही थी...आसानी से अधिकार-बोध भी जाग रहा है।

अब मृनाल के मुँह से अनायास निकलता है, 'लाइट-हाउस में एक अच्छी पिक्चर आई है, चलो न, देख आया जाये।'

'तुम' ही कहा जा रहा है। कह-कह कर लीलावती ने इस डर से छुटकारा दिलाया है।

कहती, 'बच्चा, मैं उसे लड़की कहती हूं और तू उसे आप-आप करता है।'

फौरन कोई जवाब न सूझता। मृनाल कहता, 'ठीक ही तो है। मैं तुम्हारी बेटी की इज्जत करता हूं...भक्ति करता हूं।'

'रहने दे! नहीं, नहीं, 'तुम' कहा कर। घर के भीतर 'घर की लड़की' को आप-आप करता है, सुनने में बुरा लगता है।'

मृनाल हँसता। मालविका को सुना कर कहता, 'अरे सुनिये। मातृदेवी के आदेश

पालनार्थ आप को 'तुम' कहना पड़ेगा।'

मालविका भी हँसती। कहती, 'ठीक ही तो कह रही है।'

'अभी तो कह रही हैं, अच्छा। बाद में हो सकता है नाराज हो जायें, जब देखेंगी कि मैं आदर-सम्मान उस तरह से नहीं कर पा रहा हूँ।'

'मुझे गुस्सा देखिएगा तो फिर 'आप' कहना शुरू कर दीजिएगा।'

इसी तरह से सहज हुए। 'तुम' पर आ गये।

उसके बाद प्रतिदिन का साहचर्य, कभी चकित एक मुस्कुराहट, कभी गम्भीर दृष्टि-विनिमय और कभी वेदना के रास्ते 'सहज' का आगमन हुआ है।

क्रमश: कहना आसान हो रहा है, 'लाइट-हाउस' में एक अच्छी पिक्चर आई है, चलो न, देख आया जाये।'

कहने में कोई दिक्कत नहीं हो रही है, 'ए! तुमने उस दिन जिस किताब की बात कही थी, चलो न खरीद लाएँ।'

अगर मालविका कहती, 'किताब लाइब्रेरी से ला कर पढ़ने से काम चल जाएगा', तो मृनाल उसे समझाता कि अच्छी किताब पास रखने में क्या फायदे हैं।

अगर मालविका कहती, 'रहने दो न, फिल्म देख कर क्या होगा,' तो मृनाल फिल्म की पब्लिसिटी करने बैठ जाता।

शुरू-शुरू में, जब धुँए के बादल गृहस्थी के ऊपर से छँटने लगे, जब चक्षु-लज्जा घटने लगी, तब मृनाल कहता, 'माँ! शाम को तो तुम लोग घर बैठी रहती हो, एक-आध पिक्चर देख आ सकती हो। जाओ तो बताओ।'

कभी-कभी लीलावती की इच्छा होती।

अपने लिए न सही, मालविका के लिए। पर चक्षुलज्जा के कारण बात न छेड़ पातीं। ज्योति सिनेमा के पीछे पागल रहती थी।

परन्तु और भी अनेक बातों की तरह, इस मामले में भी मृनाल ने उन्हें शर्म के दायरे से बाहर लाकर खड़ा किया था। ज्योति की किताबों की अलमारी की चाभी भी मृनाल के हाथों से मालविका के हाथ आई थी।

तैंतीस

सो, शुरू-शुरू में लीलावती के साथ।

लेकिन वे लोग तो अंग्रेजी फिल्म देखना चाहते हैं।

लीलावती कहती, 'तब तो तुम लोग ही जाओ। मेरी कुछ समझ में नहीं आता।'

कभी भक्तिभूषण ने इस व्यवस्था का विरोध किया था। लीलावती ने उस समय कहा था, 'इससे क्या हुआ ? आजकल क्या इस तरह का दकियानूसीपन चलता है ?'

लीलावती तो कहेगी ही। वह मन ही मन एक गुप्त इच्छा का पालन कर रही हैं।

सोचने में बहुत, बुरा लगता है, लगता है कोई दिल के टुकड़े कर रहा है, फिर भी सोचती है। सोचती, वह तो अब नहीं आयेगी, तब फिर लड़का सारी उम्र क्या ले कर रहेगा ?

सोचा करती—क्या दूसरी शादी लोगों ने की नहीं है ?

यूं भी नाते-रिश्तेदार सभी कहा करते, 'यह तो उम्र है, बाल-बच्चे भी नहीं हैं, लड़के की फिर से शादी कर दो न !'

इससे लीलावती को सहारा मिलता। मनोबल बढ़ जाता।

चौंतीस

परन्तु मालविका ? उसे क्या शर्म नहीं लगती है ? एक दिन तूफान में टूटे पत्ते की तरह उड़ती हुई यहां आ घुसी थी। जम कर जगह भी बना ली है। अब क्या सिंहासन पर बैठना चाहती है ?

उसने क्या इस घर के साम्राज्य में ज्योति के फैलाये चिह्नों को नहीं देखा है ? कभी किसी एकान्त क्षण में मृनाल का खोयापन नहीं देखा है ? देखी नहीं है ज्योति के प्यार भरे और सुख भरे जीवन की छोटी-छोटी चीजें ?

लीलावती रो-रो कर कहा करती, 'जरा झाड़-झूड़ कर रखो बेटी, अगर कभी आये। इन सब तुच्छ चीजों का उसे कितना शौक था ?'

यद्यपि ऐसा बहुत पहले कहा करती थी। अब नहीं कहती।

अब तो हर समझ कहती है, 'समझ तो रही हूं कि वह नहीं रही। रहती तो क्या एक लाइन नहीं लिखती ? हम न हो उसका पता नहीं जानते, उसे तो हमारा पता मालूम है।'

अब यह सब नहीं कहती हैं। पर जिस वक्त कहती थी मालविका उसकी चीजें झाड़-झूड़ कर रखती थी। अब स्वयं करती है। आलमारी कपड़ों से भरी, डिब्बों में कांच की, मोतियों की मालायें, कांच की रंग-बिरंगी चूड़ियां।...

और ? और हर वक्त झाड़-पोंछ रही है ज्योति की तस्वीर, उसके खिलौने, गुड़िया और किताबों का संग्रह। इन सारी चीजों की अधिकारिणी बन बैठने में उसे शर्म

नहीं आयेगी ? और शर्म नहीं लगेगी ज्योति के पति पर अधिकार जमाते ?

पैंतीस

परन्तु यह कौन कह सकता है उसको शर्म नहीं लगती है ?

उस दिन मृनाल उसके सामने बैठा था और उसका हाथ पकड़ कर बोला था, 'इतनी जिम्मेदारी ले सकी हो, अब मेरी जिम्मेदारी भी सभाल लो। अब मुझमे यह बोझ उठता नहीं है।'

दोनों पार्क की बेंच पर बैठे थे। धरती पर शाम का धुंधलका उतर रहा था। मालविका ने उसी दृष्टि से देखा था।

कहा था, 'दुनिया में क्या शर्म नाम की कोई चीज नहीं है ?'

'मेरे लिये अब नहीं है मालविका।' कहा था मृनाल ने, 'मैं अब हार चुका हूँ।'

'लेकिन मैं हार मानने को तैयार नहीं, मुझमें शर्म-हया बाकी है।'

'फिर भी मेरी बात सोचो मालविका, मैं भी हाड़-मास का बना इन्सान हूँ। कब तक साया के पीछे भागता फिरूँगा ? मुझे भी तो जीना है।'

छत्तीस

जीना है।

जगत का परम तथा चरम सत्य। जीना है। जीना है। समस्त संसार का कण-कण यही कह रहा है—जीना है।

तब फिर कोई मृनाल को बेशर्म निर्लज्ज कैसे कह सकता है ?

मृनाल ने तो वही कहा है जिसे लोग सदा से कहते चले आ रहे हैं। जीना है इसीलिए कहा है, 'मालविका, तुम मेरी जिम्मेदारी ले लो। मुझसे अब बोझ नहीं संभल रहा है।'

धीरे से उसके हाथ पर हाथ रख कर मालविका ने कहा था, 'मैं अगर न आती, मैं अगर निर्लज्जों की तरह, लालचियों की तरह यहाँ पड़ी नहीं रहती, तब तो शायद उसी साया को ले कर पड़े रहते।'

'यह तो अपने को धोखा देना है।'

'अभी ऐसा सोच रहे हो, तब शायद न सोचते। यही साया तुम्हारे जीवन में चिरसत्य बना रहता।'

'किससे क्या होता, यह सब अब सोचते नहीं बन रहा है मालविका। अब मैंने जान लिया है—जीवन, मृत्यु से बहुत बड़ा है।'

'मृत्यु महान् है, पवित्र है।'

'जीवन सुन्दर है, ऐश्वर्यवान है।'

'लेकिन अच्छा खासा जीवन बीत रहा है।'

'इसे अच्छा खासा नहीं कहते हैं मालविका। ऐसा सोचना भी आत्मा को धोखा देना है।'

'मुझे डर लगता है। लगता है अन्याय कर रही हूँ।'

'डरने की कोई बात नहीं है मालविका। सत्य को स्वीकार करना ही सत्यता है।'

'मैं अगर चली जाऊँ, तब फिर सब ठीक हो जायेगा।'

'सब ठीक हो जायेगा?' मृनाल ने फिर उसका हाथ कस कर पकड़ लिया—'वह कैसा 'ठीक' होगा, क्या तुम बता सकती हो? तुम्हारे चले जाने से क्या ज्योति लौट आयेगी?'

मालविका का सिर झुक गया। फिर भी कुछ रुक कर बोली, 'यह बात नहीं है। फिर भी हो सकता है तुम अपने असली 'मन' को पा सको। इस वक्त ताव में आ कर...'

'मैंने तिल-तिल अपने को जाँचा-परखा है मालविका। हर वक्त अनन्त शून्य में सिर धुनता रहा हूँ। तुमने मेरा बाह्य रूप ही देखा है, मेरे भीतरी युद्ध को नहीं देखा है। मैं युद्ध में हार गया हूँ।'

'पराजय तो लज्जा की बात है।'

'पराजय स्वीकार करने में भी गौरव है।'

'लोग क्या कहेंगे?'

'लोग? लोग क्या कहेंगे? इस बात को भी सोचा है। आज की इस परिस्थिति के लिए जिम्मेदार तो लोक-लाज ही है।...लेकिन अब अगर सिर्फ इसी तरह 'अच्छा तो हूँ' कह कर टाल जाना चाहूँ तो लोगों को ही सहन नहीं होगा। लोग और भी कुछ कहेंगे। इससे तो अच्छा है जो स्वाभाविक है, वास्तविक है, वही उनके आगे कर दिया जाये।'

मालविका बड़ी देर तक कुछ न कह सकी। उसके बाद दुःख-भरी हँसी हँस कर बोली, 'लोग शायद कहेंगे—शादी करने के अलावा दूसरा रास्ता था नहीं...तभी...'

मृनाल ने हाथ पर दबाव डालते हुये कहा—'ऐसा अगर कहेंगे तो गलत नहीं कहेंगे। सचमुच मेरे लिए कोई उपाय है भी नहीं। हर समय, इस अजीब-सी अवस्था

के विरुद्ध मेरा मन विद्रोह कर रहा है।'

'माँ से तुम कौन-सा मुँह ले कर कहोगे ?'

'मुँह से कहने की जरूरत नहीं पड़ेगी। मेरे चेहरे पर ही यह बात लिख गई है। उस लिखी बात को पढ़ सकें, माँ में उतनी बुद्धि है।'

'तब फिर पिताजी मेरा मुँह नहीं देखेंगे।'

'समय आने पर सब ठीक हो जायेगा। मनुष्य परिस्थितियों का दास है।'

'और अगर कभी वह...'

'मालविका, मैं अब उस बात की कल्पना तक नहीं करता हूँ। सारी बातें वास्तविक बुद्धि से चिन्ता कर के देखनी चाहिये।'

'मुझे लगता है, इतना सुख मैं बरदाश्त नहीं कर सकूँगी।'

'चुप रहो। ऐसी बातें मत करो। मैं देख रहा हूँ कि औरत जात अकारण ही अमंगलमय चिन्ता में लिप्त रहती है। इसे तो अमंगल को बुलावा देना कहते हैं।'

'तो क्या तुम औरतों की तरह इन बातों पर विश्वास करते हो ?'

'विश्वास करता हूँ या नहीं, यह नहीं बता सकता। फिर भी मुझे यह बातें अच्छी नहीं लगतीं। हम एक दूसरे को चाहते हैं, अब यह बात अस्वीकार नहीं की जा सकती है—इस बात को तुम भी जानती हो, मैं भी। तब क्यों झूठमूठ मरुभूमि की रचना करके हम [illegible] रहे ? बता सकती हो ?'

'तुमसे बातों में कौन जीत सका है ?'

मालविका बोली और मुस्कुरा कर देखती रही।

मृनाल ने कहा, 'मैं हाड़-मांस का आदमी हूँ, इस बात को स्वीकार कर हल्कापन महसूस कर रहा हूँ। विवेक के हाथों से छुटकारा पा गया हूँ। मेरी 'भीरुता' मेरे 'स्वर्गीय प्रेम' का छद्मवेश धारण करे, यह मेरे लिए असह्य है।'

'क्या ठीक है क्या नहीं, अभी ही समझ लिया तुमने ?'

'क्यों नहीं। मैं तो हर पल महसूस कर रहा हूँ।'

इसी तरह बातों के मोती पिरोते चल रहे हैं। माला रची जा रही है।

उसके बाद एक दिन मालविका को स्वीकार करना ही पड़ा, 'तु ! तुमने मुझे लाज-शर्म छोड़ने को बाध्य कर दिया है।'

संतोस

लीलावती की आँखों के कोर चू पड़े, परन्तु लीलावती खुशी से पागल हो रही

थी। उन्हें आशा नहीं थी कि यह दिन भी आएगा। आशा नहीं की थी कि उनकी गृहस्थी उन्हें वापस मिल सकेगी, उनका मृनाल फिर कभी 'सपूचा' हो सकेगा।

इसके अलावा—देखती तो है। समझती हैं कि लड़की मृनाल पर मर रही है। मृनाल चलता है तो उसकी छाती फटती है। मृनाल बोलता है तो वह देखती रह जाती है। और क्रमशः दोनों एक दूसरे के लिए अति आवश्यक बनते जा रहे हैं।

फिर कैसी झिझक ?

पति से आ कर बोली, 'अब ज़रा पत्रा दिखाओ पंडित को। दिन तय करवा लो।'

भक्तिभूषण ने सूखी आवाज़ में कहा, 'दिन क्या तय करना है ? आजकल जैसे शादियाँ हो रही हैं वैसी ही होने दो।'

'क्यों ? हमारी देशी शादी नहीं होगी ?' खिन्न हो कर लीलावती बोली।

'तुम्हारी देशी शादी में एक सम्प्रदान करने वाला चाहिए, कहाँ से मिलेगा ?' भक्तिभूषण ने उत्तर दिया।

'उसके तो चाचा हैं।'

'माफ करना, अब मुझसे यह न कहना कि उस चाचा के पाँव पड़ कर ले आऊँ।'

लीलावती चीख पड़ी, 'तुम यह शादी ही नहीं चाहते हो ?'

'ऐसा तो मैंने नहीं कहा।' भक्तिभूषण बोले, 'जितना देखने में अच्छा लगे उतना ही करना चाहिए।'

अड़तीस

मालविका का भी यही कहना है।

कहती, 'माँ, मैं हाथ जोड़ती हूँ। मेरे लिए बनारसी साड़ी मत खरीद बैठना। जो शोभनीय हो, वही करो।'

दोनों एक साथ जब नोटिस देने के लिए जाने लगे तब भी मालविका ने वही शोभनीय सज्जा की।

ज़रा हल्का सा प्रसाधन चेहरे का, एक नई ताँत की साड़ी और कुछ नहीं।

मृनाल दरवाज़े के सामने आ कर खड़ा हुआ, 'हो गया ?'

'वाह ! अभी हो जाएगा ? सजूँगी नहीं क्या ?'

'चलो, यह भी अच्छा है। तुम्हारे मुँह से एक अच्छी बात तो निकली। सजना,

उस दिन खूब सजना, आज देर हो रही है।'

मालविका उज्ज्वल चेहरा लिये निकल आई। लीलावती के पाँव छुए।

भक्तिभूषण के सामने जाते शर्म लगी। आज नहीं, उस दिन जरूर जायेगी। सीढ़ी से नीचे उतर आई। सोचने लगी, आकाश कैसा सुन्दर है।

फिर भी दरवाजे के सामने आकर मालविका ठिठकी।

बोली, 'लेटर बाक्स में एक चिट्ठी पड़ी है। लिफाफा है।'

पर्स से एक छोटी चाभी निकाली।

मृनाल असहिष्णु हो उठा। बोला, 'लौट कर निकाल लेना। देर हो रही है।'

'अरे! इसमें वक्त ही कितना लगेगा?'

चाभी से ताला खोला। बोली, 'बहुत जरूरी चिट्ठी भी तो हो सकती है।'

चिट्ठी निकाली। एक इलेक्ट्रिक का बिल, मृनाल के क्लब के फैशन-शो का एक कार्ड और एक इनलैण्ड लेटर।

उसे लिए मालविका खड़ी की खड़ी रह गई। सूनी-सूनी निगाहों से देखते हुये पत्र सहित मृनाल की तरफ हाथ बढ़ा दिया। इन अक्षरों से वह अपरिचित नहीं। इस घर के हर कोने में यह अक्षर फैला है। गाने की कॉपी में, डायरी में, धोबी के हिसाब की कॉपी में, ग्वाले की कॉपी में।

उन्तालीस

एक युग बीत गया।

उसी तरह से सूनी निगाहों से दोनों परस्पर को देखते रह गये।

बहुत देर बाद शताब्दी भर की नींद से मालविका ने जाग कर कहा, 'खोल कर देखो। शायद बहुत जरूरी हो।'

जरूरी! सचमुच जरूरी। लेकिन किसके लिए?

चालीस

'किसकी? किसकी चिट्ठी है?' बहुत दिनों बाद लीलावती की आवाज फटे बाँस

सी लगी। पूछा, 'क्या लिखा है?'

मृनाल ने खुला पत्र माँ की तरफ बढ़ा दिया।

लीलावती बोली, 'मैं नहीं पढ़ना चाहती। तुम ही लोग पढ़ो।' लीलावती की आवाज कर्कश थी।

भक्तिभूषण ने धीरे से पत्र उठा लिया। मन ही मन पढ़ा—

'श्रीचरण कमलेशु,

प्रेतलोक से निकल कर यह पत्र लिख रही हूँ। कितने साल हुए? तीन साल न? तीन सालों में तीन सौ सालों का इतिहास जमा हो गया है।

पर उस बात को छोड़ो। किसी तरह से फिर कलकत्ता आ पहुँची हूँ। बड़ी इच्छा हो रही है, एक बार देखूं। उसे संभव कर सकना क्या बिल्कुल ही असम्भव है? अगर असंभव है तो रहने देना। और अगर संभव हो तो सोमवार, शाम को पाँच बजे, एक बार कालेज स्ट्रीट में, हमारी उसी पुरानी किताबों की दुकान के सामने आकर खड़े हो जाना।

डरो मत, तीन सौ वर्षों का इतिहास सुनाने नहीं बैठ जाऊँगी। केवल दूर से एक बार देखूंगी। प्रणाम स्वीकार करो। इति—

ज्योति।'

'हमारी उसी पुरानी किताबों की दुकान के सामने' लिख कर 'हमारी' काट दिया था। किताबों की दुकान का उल्लेख भर छोड़ा था।

भक्तिभूषण ने पत्र पुनः बेटे की तरफ बढ़ाते हुए कहा, 'सोमवार अर्थात् आज ही।'

उसके बाद दीवाल पर टँगी घड़ी की तरफ देख कर बोले, 'इस वक्त चार बज कर दस मिनट हुए हैं।'

मृनाल ने किसी की तरफ नहीं देखा। मानों हवा को सम्बोधित किया, 'जाता हूँ।'

'जा रहा है?' एकाएक लीलावती चिल्लाईं। उसी कर्कश स्वर में बोली, 'कहाँ जा रहा है? तू कहीं नहीं जायेगा। यूं समझ ले, तुझे यह चिट्ठी मिली ही नहीं है।'

फिर भी जाने के लिये मृनाल ने पाँव बढ़ाए, 'उसे ले कर आता हूँ।'

लीलावती धप से बैठ गईं। बोलीं, 'उसे लेकर आ रहा है?'

मृनाल ने प्रेतात्मा की सी आवाज में कहा, 'और नहीं तो क्या?'

'उसे तू ग्रहण करेगा? लोग कितने तुच्छ कारणों से पत्नी का त्याग करते हैं...।'

मृनाल रुका। माँ की आंखों में आंखें डाल कर धीरे से बोला, 'जिसकी रक्षा न कर सका, उसे किस मुँह से त्यागूं?'

'फिर भी...क्या उस अपवित्र, अशुद्ध को...,' लीलावती रो पड़ीं, 'दुश्मन है, मेरी महा-शत्रु है! बार-बार मेरा घर तोड़ रही है। उसे ला कर तू क्या करेगा? मैं क्या उसके हाथ का पानी पी सकूंगी?'

'मैं पीने के लिए तुमसे जबरदस्ती नहीं करूँगा माँ।' मृनाल ने मुँह फेर लिया। पाँव बढ़ाये। लाने जा रहा है इस गृहस्थी की स्वामिनी को।

लीलावती फट पड़ीं, 'और इसका क्या होगा? इस भाग्यजली का? धर्मज्ञानी महापुरुष, इसका उत्तर तो देता जा।'

इतनी देर बाद, नाटक की मौन दर्शिका, मालविका, एकाएक हँस पड़ी। बोली, 'क्या मुसीबत है, यह बात भी कोई चिन्ता की बात है? विशेषण तो माँ तुमने दे ही दिया।'

मृनाल की तरफ बढ़ी। बोली, 'ए! तुम तो जरूर टैक्सी पकड़ोगे? देर हो गई है। उधर ही तो सियालदह है? मुझे मेरी उसी सहेली के हास्टल में उतारते हुए जा सकोगे?'

गला सहज सरल ही लगा। मानो अभी-अभी घूमने आई थी। टैक्सी से ले जाकर उतरना एक साधारण-सी बात हो।

मृनाल उस 'प्राम' हँसते चेहरे' की तरफ कुछ सेकेन्ड देखने के बाद बोला, 'चलो।'

● ○

